प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु

आचार्य कुन्दकुन्द

[प्राचीन अध्यात्म, दर्शन, सस्कृति एव ज्ञान-विज्ञान के बहुआयामी व्यक्तित्व की झाँकी का सर्वप्रथम प्रयत्न]

Shri Sanmati Pustkalaya
Sethi Colony JAIPUR
Date 5911

डॉ० राजाराम जैन
आचार्य एव अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर सस्कृत-प्राकृत विभाग
ह० दा० जैन कॉलेज, आरा
(मगध विश्वविद्यालय)

डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन
हिन्दी-विभाग,
म० म० महिला कॉलेज, आरा
(मगध विश्वविद्यालय)

Sanmati Pustkalaya
Sethi Colony JAIPUR
Date 5911

प्राच्य भारती प्रकाशन

1989

सर्वोदय एव समन्वय के पुण्य-प्रतीक,

सरस्वती के वरद पुत्र,

एकान्तमूक-साधको के लिए प्रेरणा के अजस्र-स्रोत,

युगप्रधान,

आचार्यश्री विद्यानन्द जी महाराज को सेवा मे

सादर समर्पित।

प्रकाशकीय

भारतीय सस्कृति के निर्माण मे तीर्थंकरो का योगदान अविस्मरणीय है। पूर्व-पाषाणयुगीन ऋषभदेव ने (सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एच० डी० सकलिया के अनुसार) असि (राष्ट्ररक्षा), मसि (लिपि एव भाषा का आविष्कार), कृषि, शिल्प, सेवा (चिकित्सा एव पीडित प्राणियो की यथोचित सेवा-शुश्रूषा), एव वाणिज्य की सर्वप्रथम शिक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् हमारे आचार्यो ने निरन्तर ही ज्ञान-विज्ञान की परम्परा को विकसित कर उसे आगे बढ़ाया है।

ऋषभदेव ने स्वस्थ एव समृद्ध समाज तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए व्यक्ति की सच्चरित्रता को प्रधान आधार बताया, जिसमे इन्द्रिय-दमन एव आत्मानुशासन पर विशेष बल देने के कारण उसे जैनधर्म की सज्ञा प्रदान की गई। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह की नीव पर आधारित होने और प्राणिमात्र का कल्याणमित्र होने के कारण जैनधर्म को ईसा की दूसरी सदी मे 'सर्वोदय-धर्म' के रूप मे भी जाना गया, वर्तमान सदी मे जिससे गाधी, नेहरु, बिनोवा, जयप्रकाश आदि ने पर्याप्त प्रेरणाएँ ली।

कुन्दकुन्द उसी तीर्थंकर-परम्परा के महान् सन्त-साधक, ज्ञान-पुञ्ज एव महिमा-मण्डित पूर्व-परम्परा के सवाहक-आचार्य माने गए हैं। उनकी यह विशेषता है कि वे श्रमण-परम्परा के आद्य-लेखक भी हैं। समकालीन लोकप्रिय जन-भाषा (शौरसेनी प्राकृत) मे सर्वप्राणिहिताय, सर्वप्राणि-सुखाय उन्होने अपनी प्रौढ-लेखनी से ऐसा अमूल्य ज्ञान-सागर प्रदान किया कि वह कभी भी किसी भी युग के लिए नित नवीन प्रेरणाएँ तथा निर्व्याज सुख एव शान्ति प्रदान करता रहेगा।

अध्यात्म, आचार, दर्शन, सस्कृति एव भाषा-विज्ञान के क्षेत्र मे तो कुन्दकुन्द का अद्भुत अनुदान है ही, भौतिक-जगत् के लिए भी उन्होंने

आवश्यकता इस बात की है कि युगो-युगो से लिखित सस्कृत एव प्राकृत के जैन-साहित्य मे वर्णित 'द्रव्य-व्यवस्था' वाले अशो का एक साथ सकलन हो तथा उनका विश्व की प्रमुख-भाषाओ मे अनुवाद कराकर विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिको को भेंटस्वरूप भेजा जाय, जिससे वैज्ञानिक-गण अपने अन्वेषणो के क्रम मे इस सामग्री का भी सदुपयोग कर सकें।

हम चारो बहिन-भाई ऐसे माता-पिता की सन्ताने हैं, जिन्हे अपने बचपन मे ही साहित्य एवं श्रमण-सस्कृति का पूर्ण वातावरण मिला है। उनके विशाल ग्रन्थागार के बीच बैठकर भले ही हम सस्कृत एव हिन्दी साहित्य तथा दर्शन-शास्त्र के अध्येयता न बन सके हो, फिर भी उसके बीच बैठकर पढे-लिखे, लडे-झगडे एव खेले-कूदे हैं। ज्ञान-पिपासु भी बनें। उसी के मध्य हम लोग सवेदनशील भी बन सके। ज्ञान-पिपासु के इसी सस्कार के साथ हम लोगो ने फिजिक्स, गणित, कम्प्यूटर-विज्ञान की अन्तिम परीक्षाओ मे सर्वोच्चता भी प्राप्त की और अब भले ही विज्ञान-विषय होने के नाते हमारा रास्ता श्रमण सस्कृति के अध्ययन से पृथक् हो गया, फिर भी हमारे माता-पिता द्वारा प्रदत्त श्रमण-सस्कार हमारे कर्मक्षेत्र के लिए निरन्तर पाथेय बने रहे और दिल्ली के चकचौंधया देने वाले विलासितापूर्ण वातावरण मे भी उन सस्कारो ने हमे इधर उधर न भटकाकर श्रमण-सस्कृति के गौरव से निरन्तर जोडे रखा।

विश्वविख्यात वैज्ञानिक प्रो० डॉ० D S Kothari, आदि के जैन-विज्ञान सम्बन्धी निबन्धो तथा परमपूज्य आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य तुलसीगणि एव नगराज जी के समय-समय पर दिल्ली मे हुए भाषणो से भी हम लोगो को बडी प्रेरणाएँ मिलती रही हैं अत हमारी इच्छा थी कि उस दिशा मे हम लोग भी कुछ कार्य करें। किन्तु अपनी अध्ययन एव शोध सम्बन्धी अनेक व्यस्तताओ के चलते तथा प्राच्य-विद्या का व्यवस्थित ज्ञान नही होने से हम लोग कुछ नही कर सके, इसका हार्दिक खेद रहेगा। किन्तु भविष्य मे हम लोग कुछ ठोस कार्य कर सकें, ऐसी दृढ इच्छा है।

इसी बीच, इस सदी के गौरव-शिखर अध्यात्म-योगी पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी का एक सन्देश हमे पढने को मिला, जिसमे उन्होंने

1988-89 को आचार्य कुन्दकुन्द की द्विसहस्राब्दि-समारोह-वर्ष के रूप मे मनाने की प्रेरणा दी।

साथ ही, 16 अक्टूबर 1988 को दिल्ली के फिक्की सभागार मे समाज के अग्रणी नेता आदरणीय साहू श्रेयासप्रसाद जी, साहू अशोक कुमार जी, साहू रमेशचन्द्र जी, श्री रमेशचन्द्र जी (P S J), श्री अक्षय कुमार जी, श्री रतनलाल जी गगवाल, श्री बाबूलाल जी पाटोदी, सतीश जी प्रभृति ने समाज को दिशादान देने हेतु कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि-समोराह वर्ष के उद्‌घाटन का विराट आयोजन किया, जिसमे उपराष्ट्रपति माननीय डॉ० शकरदयाल शर्मा एव अन्य गण्यमान विद्वानो के विचारोत्तेजक भाषण हुए। उन विचारो ने हमे अत्यधिक प्रभावित किया।

निरपेक्षवृत्ति से साहित्य-साधना मे सलग्न अपने मम्मी-पापा से हम लोगो ने निवेदन किया कि कुन्दकुन्द पर वे एक ऐसी पुस्तिका लिख दें, जिसमे कुन्दकुन्द के बहुमुखी व्यक्तित्व की झांकी हो तथा जो इस भ्रम को दूर कर मके कि 'कुन्दकुन्द जैनेतरो के लिए नही, वे तो केवल जैनियो के ही आचार्य हैं तथा उनका साहित्य केवल जैन-मन्दिरो मे ही रखने योग्य है।'

हमारी दृष्टि मे तो कुन्दकुन्द सभी के कल्याणमित्र हैं। वे प्राणीमात्र के परमहितैषी हैं। वे राष्ट्रीय ही नही, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के महान् विचारक, दार्शनिक, सन्त, योगी-साधक, लेखक एव पथ-प्रदर्शक है। उन्हे जाति एव सम्प्रदाय के घेरे मे बन्द रखना, उनके तेजस्वी व्यक्तित्व की अवमानना होगी। इस पुस्तक का लेखन भी उक्त विचारो के आलोक मे ही किया गया है। बहुत सम्भव है कि विद्वज्जनो के लिए यह पुस्तक सामान्य लगे, किन्तु सामान्य-जनता के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा परम विश्वास है।

यह हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि हमारे अध्ययन-काल मे सन् 1980-81 से हमारे मम्मी-पापा ने जो मासिक वृत्तियां हमारे लिए बांध रखी थी, उसमे से क्रमश॰ बचत की राशि से इस पुस्तिका का प्रकाशन हो रहा है।

आरा जैसी साधन विहीन भूमि मे, जहां बिजली एव पानी की निरन्तर अस्थिरता बनी रहती है, वहां मोमबत्ती के प्रकाश मे इस पुस्तक का

आत्म-निवेदन

बचपन मे अपने पुत्र-पुत्रियो की शरारतो से भरी तोतली वाणी तथा बाल्यकालोचित लीलाएँ हमारी साहित्यिक-यात्रा मे रग-बिरंगे, हरे-भरे उपवनो की सी ताजगी प्रदान करती रही हैं। मौलिक चिन्तनशीलता, साधनहीनो के प्रति दयालुता तथा श्रमण-सस्कृति के प्रति सहज श्रद्धाभक्ति के सस्कार और पारिवारिक आर्थिक-विपन्नता के प्रति सहज सवेदन-शीलता की भावना भी उनमे प्रारम्भ से ही बनी। उनके सुसस्कारो तथा नियमित अध्ययन एव कठोर-परिश्रम, स्वतन्त्र-चिन्तन तथा ज्ञान-पिपासा की शान्ति हेतु उनका अपना अध्यवसाय एव प्रगति की अदम्य लालसा ने हमे विविध विपन्नताओ के बीच भी थकान का अनुभव नही होने दिया।

उन्हे दिल्ली एव इलाहाबाद जैसे महँगे शहरो मे उच्चशिक्षा दिलाने का दुस्साहस हमने किया। लगभग आठ-नौ वर्षो तक उनके अध्ययन की व्यवस्था किन-किन कठिनाइयो के बीच की गई इसके अनेक रोचक एव प्रेरक सस्मरण हैं। किन्तु उनका उतना महत्त्व नही, जितना इसका कि उन्होने हमसे छिपाकर अपनी मासिक-वृत्तियो मे से कटौती की और उसे उसी अदृश्य सत्कार्य मे सदुपयोग करने का सकल्प किया। प्रस्तुत लघु पुस्तिका का प्रकाशन उसी का सुपरिणाम है। जैन-परिवारो के उन्ननीपु छात्रो के लिए यदि इस उदाहरण से कुछ प्रेरणा मिल सके, तो उससे समाज एव साहित्य का काफी काम हो सकता है।

अपने बच्चो के अनुरोधो को हमने कभी टाला नही। उसी क्रम मे कुन्दकुन्द पर एक लघु-पुस्तिका लिखने सम्बन्धी उनके अनुरोध को भी हमने टाला नही और हम लोगो ने अल्पकाल मे भी, जो जितना सम्भव था, उसे लिखकर एक ओर अपने बच्चो का मनोवल भी वढाने का प्रयत्न किया है, तो दूसरी ओर भारतीय सस्कृति-सागर के मन्थन के लिए

मन्दराचल, ज्ञान-विज्ञान के महामेरु, श्रमण-सस्कृति के मेरुदण्ड, युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द के प्रति द्विसहस्राब्दि-समारोह के क्रम मे उनके चरणो मे अपने श्रद्धा-सुमन भी अर्पित करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत रचना के लेखन-प्रसग मे हम लोगो ने जिन ख्यातिप्राप्त विद्वानो द्वारा सम्पादित कुन्दकुन्दाचार्य के विविध ग्रन्थो की सहायता ली है, उनके प्रति हम सादर आभार व्यक्त करते हैं।

यदि हमारे इस लघु प्रयत्न से जन सामान्य को कुछ भी लाभ हुआ, तो वही हमारे श्रम का बहुमूल्य पुरस्कार होगा।

—लेखक द्वय

महाजन टोली न० 2
आरा (बिहार)
18-7-89

वारस अणुवेक्खा
भत्तिसगहो
रयणसार

3 कुन्दकुन्द साहित्य का काव्य-सौष्ठव
कुन्दकुन्द की भाषा / 29
प्राकृत के तीन प्रमुख स्तर एव जैन शौरसेनी प्राकृत / 29
कुन्दकुन्द की भाषा की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ / 30
अलकार-प्रयोग / 32
रहस्यवाद की झाकी / 35
कूटपद-प्रयोग / 35
छन्द-योजना / 36

4 राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता के क्षेत्र मे आचार्य कुन्दकुन्द
समकालीन जन-भाषा का प्रयोग / 40
सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार / 41
राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता के लिए प्रयत्न / 43
ब्रज-भाषा की अखण्ड समृद्धि के लिए कुन्दकुन्द साहित्य का अध्ययन अत्यावश्यक / 43

5 कुन्दकुन्द साहित्य का सास्कृतिक मूल्याकन
समकालीन भारतीय-भूगोल एव प्राचीन जैन तीर्थभूमियाँ / 46
कुन्दकुन्द एव कालिदास / 47
राजनीति सम्बन्धी सन्दर्भ / 48
कुन्दकुन्द-साहित्य मे सम्राट सम्प्रति, खारवेल, शु ग एव शक राजाओ के कार्यकलापो की झाकी / 48
कुन्दकुन्द-साहित्य मे राजतन्त्रीय प्रणाली की झलक / 50
सप्ताग राज्य
षडग बल
चतुरगिणी सेना
धनुर्विद्या

वस्त्र-प्रकार / 52
शिक्षा / 52
विविध दार्शनिक मत / 53
दु ख-प्रकार / 54
शारीरिक रोग एव औषधियाँ / 54
व्यायाम / 54
खाद्य एव पेय पदार्थ / 54
उद्योग धन्धे / 55
मनोरजन के साधन / 56
कुन्दकुन्द साहित्य मे कथाबीजो के स्रोत / 56
सदाचरण का आदेश / 57
चोरी, डकैती एव दण्ड-व्यवस्था / 57

6 आचार्य कुन्दकुन्द आधुनिक भौतिक विज्ञान के आईने मे
जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था एव उसका वैशिष्ट्य / 59
द्रव्य (Substance) परिभाषा / 59
भ्रम-निवारण / 60
द्रव्य और आधुनिक विज्ञान / 60
जीव-द्रव्य (Soul-substance) और आधुनिक विज्ञान - प्राचीन एव नवीन प्रयोगशालाओं मे / 61
जीवात्म-विचार के क्षेत्र मे जैनाचार्य आधुनिक विज्ञान से बहुत आगे / 61
कैकेय-नरेश राजा प्रदेशी एव श्रमणकुमार केशी का ऐतिहासिक आख्यान / 62
जीव-द्रव्य की सफल खोज के लिए आधुनिक वैज्ञानिको को जैन-दर्शन का अध्ययन आवश्यक / 67
कुछ जैन-वैज्ञानिको के सराहनीय कार्य / 67

सन्नन्दिसंघसुरवर्त्मदिवाकरोऽभू-
च्छ्रीकुन्दकुन्द इतिनाम मुनीश्वरोऽसौ।
जीयात् स वै विहितशास्त्रसुधारसेन,
मिथ्याभुजंगगरलं जगत: प्रणष्टम्॥

—धर्मसंग्रह श्रावकाचार (मेधावी)

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्द,
कुन्दप्रभाप्रणयिकीर्त्तिविभूषिताश:।
यश्चारुचारणकराम्बुजचञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयत: प्रतिष्ठाम्॥

—श्रवणबेलगोल शिलालेख स० 54/67

1. युग-प्रधान आचार्य कुन्दकुन्द

आद्य सारस्वताचार्य

प्राचीन श्रमण-परम्परा के विकास मे आचार्य कुन्दकुन्द का नाम अहर्निश स्मरणीय तथा सारस्वताचार्यों मे प्रधान माना गया है। उनका महत्त्व इसमे नही कि वे मन्त्र-तन्त्रवादी थे और चमत्कारो के वल पर वे भौतिक सुखो को प्रदान करा सकते थे। इसमे भी उनका महत्त्व नही कि वे शस्त्रास्त्रो अथवा किसी सशक्त राजनीति एव पराक्रम के वल पर अपनी या अपने अनुयायियो की भौतिक महत्त्वाकाक्षाओ को पूरा कर सकते थे। इसमे भी उनका महत्त्व नही कि उन्होंने आकाश-गमन से पूर्व-विदेह की यात्रा कर सभी को चमत्कृत किया था। उनका वास्तविक महत्त्व तो इसमे है कि जड-भौतिक सुखो को क्षणिक एव हेय समझकर उन्होंने अपनी उद्दाम-यौवन से तप्त कचन-काया का प्रखर तपस्या मे भरपूर उपयोग किया और अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित कर आत्मशक्ति का सचय किया तथा पर-पीडा का अनुभव कर उनके भवताप को मिटाने का अथक प्रयत्न किया।

उन्होने अपनी अध्यात्म-योग-शक्ति के उस अविरल स्रोत को प्रवाहित किया, जो शाश्वत-सुख का जनक है और जिसने अध्यात्म के क्षेत्र मे अपनी मौलिक पहिचान वनाई। यही कारण है कि तीर्थंकर महावीर एव उनके प्रधान गणधर गौतमस्वामी के वाद, आत्म-विज्ञान, कर्मविज्ञान एव अध्यात्म-विद्या के क्षेत्र मे वे एक अमिट शिलालेख के रूप मे पृथ्वी-मण्डल पर अवतरित हुए। श्रमण-सस्कृति के इतिहास मे वे युगप्रवर्तक, युगप्रधान तथा आद्य सारस्वताचार्य के रूप मे प्रसिद्ध है।

विस्मृति के घेरे मे

परोपकारी महापुरुष, विशेषतया आध्यात्मिक सन्त, लोकख्याति से प्राय दूर ही रहते आए हैं। यही कारण है कि उनके विशिष्ट कार्यो को तो सभी जानते हैं किन्तु उनके सर्वागीण जीवन-वृत्त को जानने के साधन अज्ञात-जैसे ही रह जाते हैं। इस श्रेणी मे केवल कुन्दकुन्द ही नही, गुणधर, धरसेन, नागहस्ति, उच्चारणाचार्य, वट्टकेर, शिवार्य, कार्तिकेय, उमास्वाति, समन्तभद्र प्रभृति श्रेष्ठ विचारको के नाम भी गिनाए जा सकते हैं। यही क्यो, महर्षि वाल्मीकि, व्यास, भास, शूद्रक, कालिदास, कबीर, सूर, जायसी आदि की भी वही स्थिति है। हम इन सभी के निर्विवाद प्रामाणिक जीवन-वृत्तो से दीर्घकाल तक प्राय अनभिज्ञ ही रहे और सम्भवत आगे भी अनभिज्ञ ही रह जाते, किन्तु धन्यवाद है शोध-खोज की उस आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति को तथा उन शोधार्थी तपस्वी महामनीषियो को, जिन्होंने प्रकारान्तर से कुन्दकुन्द जैसे युगप्रधान महापुरुषो के जीवन-वृत्तो की जानकारी के उपाय भी खोज निकाले। ऐसे वैज्ञानिक उपायो के मूलाधार प्रायः निम्न प्रकार रहे हैं—

1 शिलालेखो, पट्टावलियो तथा ताम्र-पत्रो मे उपलब्ध साक्ष्य,
2 आचार्यों के साहित्य मे समकालीन विविध परिस्थितियो सम्बन्धी सन्दर्भ,
3 परवर्ती साहित्य मे उपलब्ध तद्विषयक सन्दर्भ, एव
4 टीकाकारो द्वारा अकित सूचनाएँ एव पुष्पिकाएँ।

कुन्दकुन्द साहित्य का सर्वप्रथम प्रकाशन

आचार्य कुन्दकुन्द का यद्यपि विशाल साहित्य उपलब्ध है, किन्तु उसमे उन्होंने अपना किसी भी प्रकार का परिचय नही दिया। दीर्घकाल तक स्वाध्यायप्रेमी उनकी 'समयसार' जैसी रससिक्त रचनाओ के अमृत-कुड मे डूबकर उनका परिचय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त व्यग्र रहे। यह स्थिति सन् 1900 ई० के आसपास तक रही। उस समय तक कुन्दकुन्द का सम्पूर्ण साहित्य प्रकाशित नही हुआ था। उनके उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थो का ही स्वाध्याय किया जाता था। युग की तीव्र माँग को देखकर- तथा

कुन्दकुन्द-साहित्य मे अध्यात्म एव काव्य का सौष्ठव देखकर वम्बई के प्रवासी (देवरी-सागर निवासी) श्री प० नाथूराम प्रेमी ने उनके साहित्य के प्रकाशन की सर्वप्रथम योजना बनाई तथा विविध स्रोतो से उनके जीवन-वृत्त को तैयार किया।

कुन्दकुन्द के काल की अविश्रान्त खोज

तत्पश्चात् प० जुगलकिशोर मुख्तार, डॉ० के० वी० पाठक, योरोपीय विद्वान् डॉ० हार्नले, प्रो० ए० चक्रवर्ती, प्रो० ए० एन० उपाध्ये, एव डॉ० हीरालाल जैन ने कुन्दकुन्द के समय पर गम्भीर खोजें की। इन विद्वानो ने कुन्दकुन्द के साहित्य के साथ-साथ गुणधराचार्य के गाथा-सूत्रो, यतिवृषभ के चूर्णि-सूत्रो एव उच्चारणाचार्य के उच्चारण-सूत्रो तथा आचार्य धरसेन की परम्परा मे हुए आचार्य पुष्पदन्त-भूतवलि के षट्खण्डागम का पारदर्शी अध्ययन तो किया ही, अन्य ऐतिहासिक साहित्य, जिसमे इन्द्रनन्दि तथा विबुध श्रीधर के श्रुतावतार, पल्लव, गग एव राष्ट्रकूट नरेशो के विविध शिलालेखो, ताम्रपत्रो, गुर्वावलियो, पट्टावलियो तथा परवर्त्ती आचार्यों और टीकाकारो द्वारा उल्लिखित सन्दर्भो एव पुष्पिकाओ आदि का तुलनात्मक गहन अध्ययन एव विश्लेपण भी किया और विविध ऊहापोहो के वाद उनका काल ईसा पूर्व प्रथम सदी से ईसा की तीसरी सदी के मध्य निर्धारित किया। किन्तु काल-निर्णय की यह स्थिति सन्तोषजनक सिद्ध नही हुई। क्योकि कुन्दकुन्द जैसे महापुरुषो की कालावधि निश्चित न हो, अथवा उनकी कालावधि को तीन सौ-चार सौ वर्षो के मध्य वताया जाए, यह स्थिति हास्यास्पद एव दयनीय-जैसी ही थी। इसका मुख्य कारण था, परस्पर मे विरोधी-साक्ष्यो की प्राप्ति। जैसे—

1 आचार्य कुन्दकुन्द के उल्लेखानुसार वे श्रुतकेवली भद्रवाहु के शिष्य थे।[1] (भद्रबाहु का समय ई० पू० 390 से ई० पू० 361 के लगभग माना गया है)।

---

1. सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु ज जिण कहिय।
सो तह कहिय णाय सीसेण य भद्दवाहुस्सा॥ वोधपाहुड-61

मे अपना नाम कुन्दकुन्द बतलाया है।[1] किन्तु कुन्दकुन्द कृत पाहुड-साहित्य के टीकाकार श्रुतसागर सूरि (15वी सदी) ने अपनी टीका की पुष्पिकाओ मे उनके 5 नाम बतलाए है। उस उल्लेख से विदित होता है कि आचार्य कुन्दकुन्द के अन्य नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीव, एलाचार्य एव गृद्धपिच्छ भी थे।[2]

श्रुतसागर के उल्लेख का समर्थन विजयनगर के शक स० 1307 (सन् 1229 ई०) के एक शिलालेख से भी होता है।[3]

यह आश्चर्य का विषय है कि श्रुतसागरसूरि को छोडकर कुन्दकुन्द के अन्य टीकाकारो ने उनके कुन्दकुन्द अथवा पद्मनन्दि नाम तो बतलाए हैं किन्तु अन्य नामो की कोई चर्चा नही की। आचार्य जयसेन ने उन्हें 'पद्मनन्दि' इस नाम से स्मरण करते हुए लिखा है कि "जिन्होने अपने बुद्धिरूपी सिर से महान् तत्त्वो से भरे हुए प्रस्तुत 'समयप्राभृत' (समयसार) रूपी पर्वत को उठाकर भव्य-जीवो को समर्पित कर दिया, वे महर्षि पद्म-नन्दि (सदा) जयवन्त रहे।"[4]

इन्द्रनन्दि ने भी अपने श्रुतावतार मे उन्हे कौण्डकुन्दपुर का पद्मनन्दि

---

1 इदि णिच्छयववहार ज भणिय कुन्दकुन्दमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाण ॥गाथा 91॥

2 श्रीमत्पद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपिच्छाचार्य-नाम पचकविराजितेन (श्रुतसागर कृत षट्प्राभृत-टीका की पुष्पिकायें, वाराणसी 1918 ई०)

3 आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनि।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पचधा॥

4 जयउ रिसपउमणदी जेण महातच्च पाहुणस्सेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरियो समप्पियो भव्वलोयस्स॥
(समयप्राभृत—सनातन जैन ग्रन्थमाला, पृ० 212)

निवास-स्थल

आचार्य कुन्दकुन्द आन्ध्र प्रदेश के निवासी थे—जन्म-स्थान सम्बन्धी पूर्वोक्त कथा रोचक है, इसमे सन्देह नही। किन्तु शोध-विद्वानो ने उसे अधिक महत्त्व नही दिया, क्योकि विविध प्रमाणो के आधार पर उनका विश्वास है कि कुन्दकुन्द दक्षिण-भारत के निवासी थे, उत्तर-भारत के नही। जबकि उक्त कथा पूर्णतया उत्तर-भारत से ही सम्बन्ध रखती है।

श्रवणवेलगोल के अनेक शिलालेखो तथा अन्य साक्ष्यो के आधार पर कुन्दकुन्द दक्षिण भारत के सिद्ध होते हैं। इन साक्ष्यो के अनुसार उनका जन्म-स्थल कौण्डकुन्दपुर था, जिसका अपरनाम कुरुमरई था। यह स्थान आन्ध्र प्रदेश के पेदथनाडु ज़िले मे पडता है। उनके पिता का नाम कर्मण्डु एव माता का नाम श्रीमती था। उन्हे जब दीर्घकाल तक सन्तति की प्राप्ति नही हुई, तब उन्होंने एक तपस्वी को कुछ दान दिया, जिसके फलस्वरूप उन्हे एक स्वस्थ एव सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। जन्मस्थल के नाम पर उसका नाम कोण्डकुन्द अथवा कुन्दकुन्द रखा गया।[1]

कुन्दकुन्द बचपन मे ही प्रखर-प्रतिभा सम्पन्न थे। उन्होने युवावस्था मे दीक्षा धारण की और शीघ्र ही आचार्य पद प्राप्त किया।

चमत्कार सम्बन्धी उल्लेख

महापुरुषो का चरित्र इतना निश्छल एव उनकी चित्तवृत्ति इतनी एकाग्र तथा शान्त होती है कि जगत् के प्राणी ही नही, बल्कि स्वर्ग के विक्रियाऋद्धिधारी देव भी उनकी ओर आकर्षित रहते हैं और उनकी सेवा के अवसर खोजते रहते है। महापुरुषो को सम्भवत इन सहज लौकिक आकर्षणो का भान भी नही रहता किन्तु भक्तगण इनकी चर्चाएँ विविध माध्यमो से करते रहे हैं।

---

1 दे० एपिग्राफिया कर्नाटिका, खण्ड 5 तथा पञ्चास्तिकायसार, भूमिका पृ० 5 (प्रो० ए० चक्रवर्ती, भारतीय ज्ञानपीठ, सस्करण-1975 ई०)

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने साहित्य मे जब आत्म-परिचय ही प्रस्तुत नही किया, तब उनकी किसी चमत्कारी घटना के उल्लेख का प्रश्न ही नही उठता, किन्तु उनके परवर्ती कुछ लेखको ने उनके उल्लेख किए हैं। उनके अनुसार—

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कचन-सी काया को एकाग्रचित्तपूर्वक दुर्गम अटवियो, शून्य-गुफागृहो, सघन-वनो, तरुकोटरो, गिरिशिखरो, पर्वत-कन्दराओ तथा श्मशान-भूमियो मे रहते हुए कठोर तपस्या मे लगा दिया। फलस्वरूप उन्हे चारण-ऋद्धि की प्राप्ति हो गई और उसके प्रभाव मे वे पृथ्वी से चार अगुल-प्रमाण ऊपर अन्तरिक्ष मे चलने लगे।[1] किन्तु उन्होने इस ऋद्धि मे किसी भी प्रकार की अपनी भौतिक महत्त्वाकाक्षा को पूर्ण नही किया।

ज्ञान-पिपासा की तृप्ति हेतु पूर्व-विदेह की यात्रा

एक बार की घटना है कि वे स्वाध्याय कर रहे थे, तभी जिनागमो के कुछ तथ्य उन्हे अस्पष्ट रह गये और उनके समाधान के लिए उन्होने सीमन्धर स्वामी का स्मरण किया।

सीमन्धर स्वामी उस समय पूर्व-विदेह-क्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी मे अपने समवसरण मे विराजमान थे। उनके ज्ञान मे आचार्य कुन्दकुन्द की समस्या झलक उठी और उसी समय उनकी दिव्यध्वनि मे 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' यह वाक्य निकला। इसे सुनकर किसी ने सीमन्धर स्वामी से यह प्रश्न किया कि "आपने यह आशीर्वाद किसके लिए दिया है ?" तब उन्हे उत्तर मिला कि—"भरतक्षेत्र मे मुनि कुन्दकुन्द के मन मे कुछ शकाएँ उत्पन्न हो रही हैं। उन्होने मुझे नमस्कार किया है। अत. उन्ही के लिए हमारा यह आशीर्वाद गया है।"[2]

1 पञ्चास्तिकाय की जयसेनकृत टीका का प्रारम्भ तथा देवसेनकृत दर्शनसार।

2 जैन हितैषी 10/6-7/383-85

अन्तर्गत थे। यह तीर्थंकर महावीर का क्षेत्र था। इस कारण दीर्घकाल तक यह जैन-केन्द्र भी बना रहा। मिथिला भी तीर्थंकरो की जन्मभूमि थी। मौर्यवश के अन्तिम सम्राट् सम्प्रति ने जैनधर्म का सर्वत्र प्रचार किया। बहुत सम्भव है कि कुन्दकुन्द ने दक्षिण-भारत से चलकर उसी विदेह-क्षेत्र के प्रमुख जैन-केन्द्र पुण्डरीकिणी नगरी मे किन्ही आचार्य सीमन्धर स्वामी के दर्शन किए हो।

हमारी दृष्टि से उक्त पुण्डरीकिणी नगरी (जो कमलपुष्प-वाची है) वर्तमान पटना का पडरक नाम का नगर हो सकता है, जो आज भी अपने कमलपुष्पो तथा उसके कमलगट्टे एव मखानो के लिए प्रसिद्ध है। स्थिति जो भी रही हो, इस विषय पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

कुन्दकुन्द अपरनाम पद्मनन्दि की गिरनार-यात्रा

कुन्दकुन्द के जीवन की एक दूसरी चामत्कारिक घटना का भी उल्लेख है। उसके अनुसार वे जब विहार करते हुए गिरनार पर्वत पर पहुँचे तब वहाँ दिगम्बरो एव श्वेताम्बरो का मेला लगा हुआ था। उसी समय दोनो सम्प्रदायो मे अपने अपने मत को प्राचीन सिद्ध करने हेतु शास्त्रार्थ हो गया। उस समय कुन्दकुन्द ने अपनी तपस्या के प्रभाव से पर्वत पर स्थापित पाषाणी ब्राह्मी देवी को मुखर बना दिया था तथा उसके मुख से दिगम्बर सम्प्रदाय को प्राचीन घोषित करा दिया था। इस घटना का समर्थन आचार्य शुभचन्द्र ने भी अपने 'पाण्डवपुराण' मे किया है।

प० नाथूराम प्रेमी ने इस घटना की सम्भावना को तो स्वीकार किया है किन्तु उनके मत से इसका सम्बन्ध पद्मनन्दि अपर नाम कुन्दकुन्द मे नही, बल्कि इस घटना के समकक्ष किसी अन्य घटना का सम्बन्ध 12वी सदी के किसी अन्य पद्मनन्दि के साथ होना चाहिए।[1]

---

1 जैन हितैषी 10/6-7

2 कुन्दकुन्द साहित्य

वर्गीकरण

आचार्य कुन्दकुन्द के ज्ञात साहित्य को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

1 निर्विवादात्मक उपलब्ध एव प्रकाशित साहित्य, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

(1) पचत्थिकायसगहो (पञ्चास्तिकायसग्रह)

(2) पवयणसार (प्रवचनसार)

(3) समयसार अथवा समयपाहुड

(4) णियमसारो (नियमसार)

(5) अट्ठपाहुड (अष्टप्राभृत)

(6) वारस-अणुवेक्खा (द्वादश-अनुप्रेक्षा), एव

(7) दशभक्त्यादि सग्रह

2 विवादात्मक उपलब्ध एव प्रकाशित साहित्य, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

(1) रयणसारो

(2) मूलाचार, एव

(3) कुरलकाव्य

3 विवादात्मक एव अनुपलब्ध साहित्य, जिसके अन्तर्गत षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डो पर लिखित 'परिकर्म' नाम की टीका आती है। यह ग्रन्थ अद्यावधि अनुपलब्ध है।

इस ग्रन्थ के टीकाकार आचार्य जयसेन ने अपनी तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका मे वतलाया है कि पञ्चास्तिकाय का प्रणयन शिवकुमार महाराज जैसे सक्षेप रुचिवाले शिष्यो के लिए जैनधर्म का प्राथमिक ज्ञान कराने हेतु किया गया है।[1] इस ग्रन्थ मे कुल 173 गाथाएँ है।

उक्त ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय दो श्रुतस्कन्धो मे विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध की 153 गाथाओ मे द्रव्य के स्वरूप का प्रतिपादन कर शुद्धतत्त्व का निरूपण किया गया है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध की 20 गाथाओ मे पदार्थ का वर्णन कर शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति का मार्ग वतलाया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र (10वी सदी) कृत 'समयव्याख्या' एव आचार्य जयसेन द्वितीय (12वी सदी) कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक सस्कृत-टीकाएँ महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं।

2 पवयणसारो (प्रवचनसार)

प्रस्तुत रचना मे जिनेन्द्र के प्रवचनो के सार का सीधी-सादी सरल भाषा-शैली मे अकन किया गया है। यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय एव लोकभोग्य सिद्ध हुआ है। इसका मूल वर्ण्य-विषय है प्रमाण एव प्रमेय तत्त्वो का प्रतिपादन। इसमे कुल 275 गाथाएँ है। ग्रन्थ की विषयवस्तु निम्नलिखित तीन अधिकारो मे विभक्त है—

(1) ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन—इसमे शुद्धोपयोग, अतीन्द्रियज्ञान, आत्मा एव ज्ञान की एकता आदि का सरस वर्णन किया गया है। यह वर्णन 92 गाथाओ मे समाहित है।

(2) ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापन—इसमे उत्पाद, व्यय एव ध्रौव्य रूप सत्ता एव द्रव्य-वर्णन, जीव-पुद्गल-वर्णन, निश्चय-व्यवहार दृष्टि एव शुद्धात्म आदि ज्ञेय पदार्थों का 108 गाथाओ मे वर्णन किया गया है।

(3) चरणानुयोगसूचक चूलिका—इस प्रकरण मे मोक्षमार्ग के साधन एव शुभोपयोग की 75 गाथाओ मे चर्चा की गई है।

---

1 "अथवा शिवकुमार-महाराजादि-सक्षेपरुचिशिष्यप्रतिवोधनार्थ विरचिते पचास्तिकायप्राभृतशास्त्रे•• "—देखिए जयसेन कृत पचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति-टीका का प्रारम्भिक अश।

प्रस्तुत ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्र कृत 'तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति' एव आचार्य जयसेन कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की सस्कृत टीकाएँ सुप्रसिद्ध हैं।

3 समयसार (अथवा समयप्राभृत)

आचार्य अमृतचन्द्र ने प्रस्तुत ग्रन्थ की गुण-गरिमा का वर्णन करते हुए इसे विश्व का असाधारण अक्षय नेत्र कहा है। अनेक आचार्यों ने इसे परमागमो का सार कहा है। शोधार्थियो एव स्वाध्यायार्थियो मे यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हुआ है कि इसके सर्वाधिक विविध सस्करण एव पद्यानुवादादि प्रकाशित हुए हैं। यह ग्रन्थ जैनधर्म-दर्शन की महिमा का स्थायी कीर्तिस्तम्भ, मोक्षमार्ग का अखण्ड दीप, मुमूर्षुओ के लिए कामधेनु तथा कल्पवृक्ष के समान माना गया है। आत्मतत्त्व का इतना सुन्दर, सरस एव प्रवाहपूर्ण गम्भीर विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नही। परवर्ती लेखको के लिए यह ग्रन्थ एक प्रमुख प्रेरक स्रोत रहा है।

उक्त ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय निम्न दस अधिकारो मे विभक्त है—

1	पूर्वरग एव जीवाधिकार	(38 गाथाएँ)
2	जीवाजीवाधिकार	(30 गाथाएँ)
3	कर्तृकर्माधिकार	(76 गाथाएँ)
4	पुण्यपापाधिकार	(19 गाथाएँ)
5	आस्रवाधिकार	(17 गाथाएँ)
6	सवराधिकार	(12 गाथाएँ)
7	निर्जराधिकार	(44 गाथाएँ)
8	बन्धाधिकार	(51 गाथाएँ)
9	मोक्षाधिकार	(20 गाथाएँ)
10	सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार	(108 गाथाएँ)
		कुल 415 गाथाएँ

इस ग्रन्थ पर विविध विस्तृत अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं, जिनमे से निम्न टीकाएँ एव हिन्दी अनुवाद प्रमुख हैं—

1 आचार्य अमृतचन्द्र कृत आत्मख्याति टीका (10वी सदी)
2 आचार्य जयसेन (द्वितीय) कृत तात्पर्यवृत्ति टीका (12वी सदी)

उक्त ग्रन्थ का वर्ण-विपय 12 अधिकारो मे विभक्त है। इसमे कुल 187 गाथाएँ हैं। अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं—

1	जीवाधिकार	(19 गाथाएँ)
2	अजीवाधिकार	(18 ,,)
3.	शुद्धभावाधिकार	(18 ,,)
4	व्यवहारचारित्राधिकार	(21 ,,)
5	परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार	(18 ,,)
6	निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार	(12 ,,)
7	परमालोचनाधिकार	(6 ,,)
8·	शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार	(9 ,,)
9	परमसमाध्यधिकार	(12 ,,)
10	परमभक्त्यधिकार	(7 ,,)
11	निश्चयपरमावश्यकाधिकार	(18 ,,)
12	शुद्धोपयोगाधिकार	(28 ,,)

प्रस्तुत ग्रन्थ पर मुनिराज पद्मप्रभ मलधारिदेव (12 वी सदी) कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की सस्कृत टीका एव ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी कृत हिन्दी-टीका (1916 ई०) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5 पाहुडसाहित्य

'पाहुड' ठेठ जनभापा का शब्द है जिसका अर्थ है—उपहार अथवा सस्नेह भेंट। भोजपुरी वोली, जो कि विहार की प्रमुख वोलियो मे अग्रगण्य है, आज भी इसी अर्थ मे उसका प्रयोग किया जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द प्रवुद्ध विचारको के लिए तो समयसार आदि अनेक विचारपूर्ण प्रौढ ग्रन्थ लिखकर उन्हे कृतार्थ कर चुके थे किन्तु सामान्य जनता, जिसमे अर्धशिक्षित, अशिक्षित, साधनविहीन एव उपेक्षित कर्मकरो की सख्या अधिक थी, उनके लिए भी लिखा जाना युग की माँग थी। ऐसी जनता के लिए विधि-निपेध विधा का सीधी-सादी सरल-भापा तथा मुक्तक शैली मे कुछ ऐसा लिखा जाना आवश्यक था, जिसमे ऋजुजडो एव वक्रजडो को उनके प्रशस्त मार्ग से स्खलित होने पर आवश्यकतानुसार तर्जना-वर्जना भी हो और आवश्यक-

तानुसार भावुक स्नेह-प्रदर्शन भी। जिसमे स्वर्णिम अतीत की पृष्ठभूमि की झाँकी हो और वर्तमान की यथार्थता का प्रदर्शन तथा भविष्य की भूमिका का सकेत भी। स्वस्थ समाज एव राष्ट्र-निर्माण के लिए इस प्रकार के सरचनात्मक साहित्य की महती आवश्यकता है। हमारी दृष्टि से प्रस्तुत पाहुडसाहित्य सामान्य जनता के लिए कुन्दकुन्द द्वारा प्रदत्त वस्तुत स्नेह-सिक्त उपहार तथा प्यार का पाथेय माना जा सकता है।

पाहुड (प्राभृत) साहित्य की विधा कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा भिन्न है। पूर्वोक्त साहित्य मे जहाँ वे प्रवचन-शास्त्री, तत्त्वोपदेष्टा एव आत्मार्थी चिन्तक के रूप मे दिखाई देते है, वही प्रस्तुत साहित्य मे वे एक तेजस्वी, समाजोद्धारक एव सशक्त अनुशास्ता के रूप मे दिखाई पडते है। पाहुडसाहित्य एक तीखा अकुश भी है, जो साधको को शिथिलाचार की ओर वढने से रोकता है। प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द-काल मे समाज मे शिथिलाचार का प्रवेश होने लगा था। उसे उससे वचाने तथा सावधान करने हेतु पाहुड-साहित्य का प्रणयन किया गया था। यह साहित्य साधको के लिए मान्य आचार-सहिता (code of conduct) था।

कहा जाता है कि कुन्दकुन्द ने 84 पाहुडो की रचना की थी किन्तु उनमे से वर्तमान मे 8 पाहुड ही उपलब्ध एव प्रकाशित है। यह पाहुड-साहित्य परस्पर मे सर्वथा स्वतन्त्र साहित्य है अर्थात् एक पाहुड से दूसरे पाहुड के विपय का कोई सम्बन्ध नही।

श्रुतसागर सूरि (16वी सदी) को अपने समय मे सम्भवतः छह पाहुड ही उपलब्ध हो सके थे, अत उन्होने उन्ही पर पाण्डित्यपूर्ण सस्कृत टीका लिखी, जो षट्प्राभृतादिसग्रह के नाम से प० नाथूराम प्रेमी के सत्प्रयत्न से सन् 1920 मे माणिकचन्द्र सीरीज़ से सर्वप्रथम प्रकाशित हुए। वाद मे दो पाहुड और उपलब्ध हुए। उनका भी उसमे समावेश कर लिया गया। अष्ट-पाहुडो पर हिन्दी मे प० जयचन्द जी छावडा की राजस्थानी भापा-टीका प्रसिद्ध है। वाद मे अन्य विद्वानो ने भी उसके अनेक सस्करण प्रकाशित किए।

अष्टपाहुड के अन्तर्गत निम्नलिखित 8 रचनाएँ आती हैं—

(1) दर्शनपाहुड (36 गाथाएँ मात्र)
(2) सूत्रपाहुड (27 गाथाएँ ,,)

(3) चारित्रपाहुड (45 गाथाएँ मात्र)
(4) वोधपाहुड (61 गाथाएँ ,,)
(5) भावपाहुड (164 गाथाएँ ,,)
(6) मोक्षपाहुड (106 गाथाएँ ,,)
(7) लिंगपाहुड (22 गाथााएँ ,,)
(8) शीलपाहुड (40 गाथाएँ ,,)

6 वारस अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)

पदार्थ के स्वरूप का वारम्वार सूक्ष्मानिसूतम एकाग्र चिन्तन (अनु+प्र+ईक्षण) करना ही अनुप्रेक्षा है। इन अनुप्रेक्षाओ को 'भावना' भी कहा गया है। वैराग्य सम्वन्धी भावना के पोषण की दृष्टि मे इसका विशेप महत्त्व है। ये अनुप्रेक्षाएँ अथवा भावनाएँ 12 होती हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कुल 91 गाथाओ मे उनका क्रम निम्न प्रकार निर्धारित किया है—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णससारलोगमसुचित।
आसवसवरणिज्जरधम्म वोहिं च चिंतेज्जो॥ (गाथा-2)

अर्थात् (1) अध्रुव (अनित्य), (2) अशरण, (3) एकत्व, (4) अन्यत्व, (5) ससार, (6) लोक, (7) अशुचित्व, (8) आस्रव, (9) सवर, (10) निर्जरा, (11) धर्म एव (12) वोधि। इन द्वादश अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन करना चाहिए।

उक्त रचना के अनुकरण पर परवर्तीकालो मे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश एव हिन्दी आदि मे लगभग दो दर्जन से अधिक रचनाएँ लिखी गईं।

7 भक्ति-सगहो (भक्ति-संग्रह)

प्रस्तुत साहित्य मे आराध्यो के प्रति भक्ति का निदर्शन एव व्याख्या की गई है। इस साहित्य का आचार, अध्यात्म एव सिद्धान्त की दृष्टि मे तो अपना विशेप महत्त्व है ही, साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से भी उनका विशेप महत्त्व है। क्योकि इस भक्ति-साहित्य की प्रत्येक रचना के अन्त मे प्राकृत गद्याश भी प्रस्तुत किया गया है। ये अश ऐतिहासिक महत्त्व के हैं, क्योकि एक ओर तो वे जैन-शौरसेनी की गद्य-शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरी ओर, जैन-शौरसेनी भापा के परिनिष्ठित रूप को प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि हाथीगुम्फा-शिलालेख (वीर पराक्रमी जैन-सम्राट कलिगाधिपति खारवेल सम्बन्धी) को जैन-शौरसेनी प्राकृत का प्राचीनतम उदाहरण माना गया है किन्तु उसमे सन्दर्भित भाषा का स्थिर रूप नही आ सका है। अत जैन-शौरसेनी के गद्याशो तथा उनकी परिनिष्ठित भाषा के कारण यह साहित्य विशेप महत्त्वपूर्ण है।

उक्त भक्ति-साहित्य कुन्दकुन्द कृत है या नही, इस सन्देह का निराकरण आचार्य प्रभाचन्द्र की इस उक्ति से हो जाता है जिसमे उन्होने स्पप्ट लिखा है कि 'प्राकृत-भक्ति-सग्रह' तो आचार्य कुन्दकुन्द कृत है जबकि 'सस्कृत-भक्ति-सग्रह' पूज्यपाद स्वामी कृत (सस्कृता सर्वा भक्त्य पूज्यपादस्वामिकृता प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृता॰)। इन भक्तियो के नाम एव क्रम इस प्रकार हैं —

(1) तीर्थंकरभक्ति (8 गाथाएँ एव गद्याश)
(2) सिद्धभक्ति (12 „ „)
(3) श्रुतभक्ति (11 „ „)
(4) चारित्रभक्ति (10 „ „)
(5) योगिभक्ति (23 „ „)
(6) आचार्यभक्ति (10 „ „)
(7) निर्वाणभक्ति (21 „ „)
(8) नन्दीश्वरभक्ति (केवल गद्याश)
(9) शान्तिभक्ति (केवल गद्याश)
(10) समाधिभक्ति (केवल गद्याश)
(11) पञ्चगुरुभक्ति (7 गाथाएँ एव गद्याश), एव
(12) चैत्यभक्ति (केवल गद्याश)

8 रयणसार (रत्नसार)

प्रस्तुत ग्रन्थ मे सागार (गृहस्थ) एव अनगार (मुनि) के आचार-धर्म के विविध पक्षो की सरल एव सरस भापा-शैली मे व्याख्या की गई है। इस रचना के अद्यावधि अनेक सस्करण निकल चुके हैं किन्तु डॉ॰ देवेन्द्र कुमार शास्त्री द्वारा सम्पादित सस्करण (इन्दौर, 1974 ई॰) सर्वश्रेष्ठ, प्रामाणिक एव सर्वोपादेय है। प्रस्तुत रचना मे 155+12 गाथाएँ हैं।

3. कुन्दकुन्द साहित्य का काव्य-सौष्ठव

कुन्दकुन्द की भाषा

आचार्य कुन्दकुन्द को केवल अध्यात्मी सन्त-कवि मानकर उनके विराट व्यक्तित्व को सीमित करना उपयुक्त नही। वे निश्चय ही एक योगी और सिद्ध महापुरुष तो थे ही, इसके अतिरिक्त वे एक महान् भाषाविद्, साहित्यकार एव भारतीय सस्कृति के प्रामाणिक आचार्य-लेखक भी थे।

भाषा-वैज्ञानिको ने उनके साहित्य की भाषा को जैन-शौरसेनी प्राकृत माना है। शौरसेनी (नाटको मे प्रयुक्त शौरसेनी) और जैन-शौरसेनी प्राकृत मे वही अन्तर है जो वैदिक और लौकिक सस्कृत मे, मागधी और अर्धमगधी प्राकृत मे, महाराष्ट्री और जैन-महाराष्ट्री प्राकृत मे, अपभ्रश और अवहट्ठ मे तथा हिन्दी और हिन्दुस्तानी मे है।

प्राकृत के तीन प्रमुख स्तर एव जैन शौरसेनी प्राकृत

यहाँ विषय-विस्तार के भय से सामान्य भाषा-भेद पर अधिक विचार न कर केवल इतनी जानकारी दे देना ही पर्याप्त है कि भाषा वैज्ञानिको ने प्राकृत-भाषा के तीन प्रमुख स्तर माने हैं—(1) मागधी, (2) अर्धमागधी एव (3) शौरसेनी। कुन्दकुन्द की भाषा की मूल-प्रवृत्ति शौरसेनी होने पर वह प्राच्य-अर्धमागधी से अधिक प्रभावित है। जैनेतर सस्कृत नाटको की शौरसेनी से कुन्दकुन्द की शौरसेनी अधिक प्राचीन है। महाकवि दण्डी के अनुसार, प्राकृत (अर्थात् शौरसेनी प्राकृत) ने महाराष्ट्र प्रदेश मे प्रवेश पाने पर जो रूप धारण किया, वही उत्कृष्ट महाराष्ट्री प्राकृत के नाम मे प्रसिद्ध

कध < कथम् (प्रवचन० 113)
तधा < तथा (प्रवचन० 146)
अपवाद—अधिकतेजो < अधिकतेज (प्रवचन० 19)

(3) महाराष्ट्री-प्राकृत के समान मध्य एव अन्त्यवर्त्ती ककार-लोप एव अ-स्वर शेष। यथा—

वेउव्विओ < वैंक्रियिक (प्रवचन० 171)

(4) महाराष्ट्री-प्राकृत के समान मध्य एव अन्त्यवर्त्ती क्, ग्, च्, ज्, त्, द् का प्राय अनियमित रूप से लोप तथा उद्वृत्त-स्वर के स्थान पर य-श्रुति का पाया जाना तथा अनादि प-कार के लुप्त होने पर उद्वृत्त स्वर के स्थान पर व-श्रुति का पाया जाना। यथा —

य-श्रुति→सयल < सकल (प्रवचन० 54)
आयास < आकाश (पञ्चास्ति० 91)
लोय < लोक (प्रवचन० 35)
सायर < सागर (पञ्चास्ति० 172)
वयणेहि < वचनै (पञ्चास्ति० 34)
भायणो < भाजन (भावप्राभृत० 65 तथा 69)
सुय < श्रुतम् (प्रवचन० 33)
मारुयवाहा < मारुतवाधा (भावप्राभृत 121)
पयत्थो < पदार्थ (प्रवचन० 14)
उयरे < उदरे (भावपाहुड 39)
हवइ < भवति (मोक्षपाहुड 38)
व-श्रुति—उपवासो < उपवास (प्रवचन०, 1/69)
उपधीदो < उपधीत (प्रवचन० 3/19)

(5)(क) प्रथमा विभक्ति मे महाराष्ट्री-प्राकृत के समान 'ओ' यथा—

सो < स (चारित्रप्रा 38)
जो < य (,, ,,)

(ख) चतुर्थी एव पष्ठी के बहुवचन मे—'सिं'। यथा—

तेसिं < तेभ्य (प्रवचन० 82)

अनुप्रास-अलकार

सिद्धिराधसिद्ध साधिदमाराधिदं च एयट्ठ ।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ॥
(समयसार-304)

अप्रस्तुतप्रशसालकार

"गुडमिश्रित दूध पीने पर भी सर्प विष रहित नही हो सकता ।" इस उक्ति के द्वारा अप्रस्तुतप्रशसा का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । यथा—

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्म ।
गुडसुद्ध पि पिवता ण पण्णया णिव्विसा होति ॥
(भावपाहुड-137)

उदाहरणालकार

कुन्दकुन्द-साहित्य मे उदाहृणालकारो की छटा तो प्राय सर्वत्र ही विखरी हुई है । कुन्दकुन्द ने वालाववोध के लिए लौकिक उपमानो एव उपमेयो के माध्यम से अपने सिद्धान्तो को पुष्ट करने का प्रयास किया है । उनके ये उपमान-उपमेय परम्परा प्राप्त न होकर प्राय सर्वथा नवीन है । नई नई उद्भावनाओ के द्वारा उन्होने उदाहरणो की झडी-सी लगा दी है । समयसार के पुण्य-पापाधिकार मे पुण्य-पाप की प्रवृत्ति को समझाने के लिए उन्होने देखिए, कितना सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

सोवण्णियम्हि णियल बधदि कालायस च जह पुरिस ।
बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ॥ 146॥

अर्थात् जिस प्रकार पुरुष को लोहे की वेडी बाँधती है और स्वर्ण की वेडी भी बाँधती है, उसी प्रकार किया गया शुभ अथवा अशुभ कर्म भी जीव को बाँधता ही है ।

इसी प्रकार कर्मभाव के पककर गिरने के लिए पके हुए फल के गिरने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं वज्झए पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥ (समय०-168)

अर्थात् जिस प्रकार कोई फल पक कर जब गिर जाता है, तब वह पुन बोंडी के साथ नही बँध सकता। उसी प्रकार जब जीव का कर्मभाव पककर गिर जाता है, तब फिर वह पुन उदय को प्राप्त नही होता।

रहस्यवाद की झाँकी

ज मया दिस्सदे रूव तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणग दिस्सदे णत तम्हा जपेमि केण ह ॥ (मोक्ख-29)

अर्थात् जो रूप मेरे द्वारा देखा गया है, वह सर्वथा जानता नही और जो जानता है वह दिखाई नही देना। तब मैं किसके साथ बात करूँ ? इस प्रकार निराकार अदृश्य जीवात्मा का यहाँ सुन्दर वर्णन किया गया है।

कूट-पद-प्रय ग

कूट-पदो के प्रयोग कुन्दकुन्द-साहित्य मे प्रचुरता से नही मिलते, क्वचित् कदाचित् ही मिलते है। वस्तुत इस प्रकार की रचनाएँ, जिनके कि शब्दो के साथ साधारण अर्थ भी रहते हैं, फिर भी सरलता से उनका भाव समझने मे कठिनाई होती है और जिनका अर्थ शब्दो की भूलभुलैयो मे प्रच्छन्न रहता है, वे कूट-पद कहलाते है। कुन्दकुन्द-साहित्य मे भी कही-कही इस प्रकार के कुछ कूट-पद उपलब्ध है। उदाहरणार्थ—

तिहि तिण्णि धरिवि णिच्च नियरहिओ तह तिरुण परियरियो।
दो दोसविप्पमुक्को परमप्पाझायए जोइ ॥ (मोक्ष० 44) ॥

अर्थात् तीन (अर्थात् मन, वचन एव काय) के द्वारा तीन (अर्थात् वर्षा-कालयोग, शीतकालयोग और उष्णकालयोग) को धारण कर निरन्तर तीन (अर्थात् मिथ्यात्व एव निदानरूप शल्यो) से रहित तीन (अर्थात् सम्यदर्शन आदि तीन रत्नो) से युक्त और दो दोषो (अर्थात् राग एव द्वेष) से रहित योगी, परमात्मा अर्थात् सिद्ध के समान उत्कृष्ट आत्म-स्वरूप का ध्यान करता है। (इस पद्य का अर्थ विषय का विशेष जानकर

गाहिणी

णहि दाण णहि पूया णहि सील णहि गुण ण चारित्त।
जे जइणा भणिदा ते णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया॥

(रयणसार 39)

चपला

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति॥

(रयणसार 55)

4. राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं अखंडता के क्षेत्र मे आचार्य कुन्दकुन्द

कुन्दकुन्द-साहित्य के अद्यावधि अध्ययन से यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होने जैन दर्शन, अध्यात्म एव आचार के क्षेत्र मे मौलिक चिन्तन किया तथा परवर्ती आचार्य-लेखको के लिए वे तेजोद्दीप्त प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुए। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उन्होंने राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता, स्वस्थ समाज एव राष्ट्र-निर्माण, लोकप्रिय जन-भाषा प्रयोग तथा समकालीन भारतीय सस्कृति एव भूगोल को भी प्रकाशित किया और इस प्रकार विविध सकीर्णताओ से ऊपर उठकर उन्होंने अपने निष्पक्ष चिन्तक-लेखक के सार्व-जनीन रूप को भी प्रकट किया है। यहाँ उन तथ्यो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। साहित्य-लेखन के माध्यम से कुन्दकुन्द के राष्ट्रीय मूल्य के निम्न कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—

1 स्वरचित साहित्य मे समकालीन लोकप्रिय जनभाषा—शौरसेनी-प्राकृत का आजीवन-प्रयोग,

2 सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार, तथा

3 राष्ट्रीय भावात्मक एकता एव अखण्डता के लिए प्रयत्न।

समकालीन जनभाषा-प्रयोग—आधुनिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो आचार्य कुन्दकुन्द अपने समय के एक समर्थ जनवादी सन्त-विचारक एव लेखक थे। इस कोटि का लेखक बिना किसी वर्गभेद एव वर्णभेद की भावना के, प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुँचने का प्रयत्न करता है और उसके सुख-दुख की जानकारी प्राप्त कर उन्हें जीवन के यथार्थ सुख-सन्तोष का

विकास शौरसेनी-प्राकृत से हुआ है। अत निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो कुन्दकुन्द ही ऐसे प्रथम आचार्य हैं, जिनके साहित्य ने आधुनिक ब्रजभाषा एव साहित्य को न केवल भावभूमि प्रदान की, अपितु उसके बहुआयामी अध्ययन के लिए मूल-स्रोत भी प्रदान किए। इस दृष्टि से कुन्दकुन्द को हिन्दी-साहित्य, विशेषतया ब्रजभाषा एव साहित्य रूपी भव्य प्रासाद की नींव का ठोस पत्थर माना जाय, तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार—कुन्दकुन्द की दूसरी विशेषता है उनके द्वारा सर्वोदयी सस्कृति का प्रचार। भारतीय-सस्कृति त्याग की सस्कृति है, भोग की नही। कुन्दकुन्द ने उसे आपादमस्तक समझा एव सराहा था। वे सिद्धान्तो के प्रदर्शन मे नही, बल्कि उन्हे जीवन मे उतारने की आवश्यकता पर वल देते थे। उनके जो भी आदर्श थे, उनका सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने अपने जीवन पर किया और जब वे उसमे खरे उतरते थे, तभी उन्हे सार्वजनीन रूप देते थे। उनके 'पाहुडसाहित्य' का यदि गम्भीर विश्लेषण किया जाय, तो उससे यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि उनके अहिंसक एव अपरिग्रह सम्बन्धी सिद्धान्त केवल मानव-समाज तक ही सीमित न थे, अपितु समस्त प्राणी-जगत् पर भी लागू होते थे। 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त का उन्होने आजीवन प्रचार किया।

आचार्य कुन्दकुन्द की सर्वोदयी-सस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह वस्तुतः हृदय-परिवर्तन एव आत्मगुणो के विकास की सस्कृति है। उसका मूल आधार मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एव मध्यस्थ-भावना है। रुपयो-पैसो, सोना-चाँदी, वैभव, पद-प्रभाव आदि के वल पर अथवा भौतिक-शक्ति के वल पर क्या आत्मगुणो का विकास किया जा सकता है? क्या शारीरिक सौन्दर्य से तथा उच्च-कुल एव जाति मे जन्म ले लेने मात्र से ही सद्गुणो का आविर्भाव हो जाता है? सरलता, निश्छलता, दयालुता, परदुखकातरता, श्रद्धा एव सम्मान की भावना क्या दूकानो पर विकती है, जो खरीदी जा सके? नही। सदगुण तो यथार्थत श्रेष्ठ गुणीजनो के ससर्ग से एव वीतराग-वाणी के अध्ययन से ही आ सकते हैं। कुन्दकुन्द ने कितना सुन्दर कहा है—

णवि देही वदिज्जइ णविय कुलो णविय जाइ संजुत्तो।
को वदइ गुणहीणो णहु सवणो णेव सावओ होइ ॥ दसण० 27

अर्थात् न तो शरीर की वन्दना की जाती है और न कुल की। उच्च जाति की भी वन्दना नही की जाती। गुणहीन की वन्दना तो कौन करेगा ? क्योकि न तो गुणो के विना मुनि हो सकता है और न ही श्रावक। पुन. कुन्दकुन्द कहते हैं—

सव्वे विय परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सील जेसु सुसील सुजीविद माणुसं तेसिं ॥ सील० 18

अर्थात् भले ही कोई हीन जाति का हो, सौन्दर्य-विहीन कुरूप हो, विकलाग हो, झुरियो से युक्त वृद्धावस्था को भी प्राप्त क्यो न हो, इन सभी विरूपो के होने पर भी यदि वह उत्तम शील का धारक हो तथा यदि उसके मानवीय गुण जीवित हो तो उस विरूप का भी मनुष्य-जन्म श्रेष्ठ है।

आत्मगुण के विकास का अर्थ कुन्दकुन्द ने यही माना है कि जिससे व्यक्ति अपने परिवार, समाज एव देश का कल्याण कर सके। इन सवके लिए व्यक्ति का सच्चरित्र होना अत्यावश्यक है। यह गुण सार्वकालिक एव सार्वभौमिक सत्य है। सम्राट अशोक तब तक प्रियदर्शी न बन सका और तब तक भारत-माता के गले का हार न बन सका, जब तक उसने कलिंग-युद्ध के अपराध के प्रायश्चित मे अपनी तलवार तोडकर नही फेंक दी और अहिंसक जीवन व्यतीत नही करने लगा। मोहनदास करमचन्द गाधी तब तक महात्मा नही वन सके जब तक उन्होने महर्षि जनक, तीर्थंकर महावीर एव गौतमबुद्ध की भूमि का स्पर्श कर अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह को अपने जीवन मे नही उतार लिया।

जीवन के सन्तुलन एव समरसता के लिए ज्ञान एव साधना अथवा तप के समन्वय पर कुन्दकुन्द ने विशेष बल दिया। क्योकि एक के बिना दूसरा अन्धा व लगडा है। पारस्परिक सयमन के लिए एक को दूसरे की महती आवश्यकता है। कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है—

तवरहिय ज णाण णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेण संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ मोक्ख ० 59

अर्थात् तपरहित ज्ञान एव ज्ञानरहित तप ये दोनो ही निरर्थक हैं (अर्थात् एक के विना दूसरा अन्धा एव लँगडा है) अतः ज्ञान एव तप से युक्त साधक ही अपने यथार्थ लक्ष्य को प्राप्त करता है।

पूर्व-परम्परा प्राप्त कर आचार्य कुन्दकुन्द ने ससार की समस्त समाज-विरोधी दुष्प्रवृत्तियो एव अनाचारो को पाँच भागो मे विभक्त किया—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील एव परिग्रह। इनका यथाशक्ति त्याग करना ही श्रावकाचार है तथा सर्वदेश त्याग करना ही मुनि-आचार। जैनधर्म की यह आचार-व्यवस्था वस्तुत सर्वोदयवाद का अपरनाम माना जा सकता है, क्योकि उन दोनो मे न केवल मानव के प्रति, अपितु समस्त प्राणि-जगत् के प्रति ही सद्भावना, सुरक्षा एव उसके विकास की प्रक्रिया मे उसके सहयोग की पूर्ण कल्याण-कामना निहित रहती है। अत यदि जैनाचार का मन, वचन एव काय मे निर्दोष पालन होने लगे, तो सारा ससार स्वत ही सुधर जायगा। कोर्ट-कचहरियो एव थानो की आवश्यकता ही नही रहेगी। उनमे ताले पड जावेंगे। पुलिस, सेना, तोप एव तलवारो की भी आवश्यकता नहीं रहेगी।

Indian Penal Code मे वर्णित अपराध-कर्मों तथा पूर्वोक्त पाँच पापो का यदि विधिवत् अध्ययन किया जाये, तो उनमे आश्चर्यजनक समानता दृष्टिगोचर होती है।[1] इस कोड मे भी पाँच-पापो का विभिन्न धाराओ मे वर्गीकरण कर उनके लिए विविध दण्डो की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। अन्तर केवल यही है कि एक मे प्रायश्चित, साधना, आत्म-सयम तथा आत्मशुद्धि के द्वारा अपराध-कर्मों से मुक्ति का विधान है, तो दूसरे में कारागार की सजा, अर्थदण्ड एव पुलिस की मारपीट आदि से अपराध-कर्मों की प्रवृत्ति को छुडाने के प्रयत्न की व्यवस्था है।

आदर्शवादी दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो स्वस्थ समाज एव

---

1 विशेष जानकारी के लिए दे० रत्नकरण्डश्रावकाचार [सम्पादक—श्री क्षुल्लक धर्मानन्दजी, दिल्ली 1988] मे डॉ० राजाराम जैन द्वारा लिखित प्राक्कथन।

कल्याणकारी राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से कुन्दकुन्द द्वारा निर्दशित जैनाचार अथवा सर्वोदय का सिद्धान्त आज भी उतना ही प्रासगिक है, जितना कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व। विश्व की विषम समस्याओ का समाधान उसी से सम्भव है।

राष्ट्रीय भावात्मक एकता एवं अखण्डता के लिए प्रयत्न—आचार्य कुन्दकुद ने तीमरा महत्त्वपूर्ण कार्य किया राष्ट्रीय अखण्डता एव एकता का। वे स्वय तो दक्षिणात्य थे। उन्होने वहाँ की किसी भापा मे कुछ लिखा या नही, इसकी निश्चित सूचना नही है। तमिल के पचमवेद के रूप मे प्रमिद्ध थिरुक्कुरल नामक काव्य-ग्रन्थ का लेखन उन्होने किया था, ऐसी कुछ विद्वानो की मान्यता है किन्तु यह मान्यता अभी तक सर्वमम्मत नही हो पाई है। फिर भी यदि यह मान भी लें कि वह उन्ही की रचना है तो भी उन्होने वाद मे प्रान्तीय सकीर्णता से ऊपर उठने का निश्चय किया और शूरसेन देश (अथवा मथुरा) के नाम पर प्रसिद्ध शौरसेनी-प्राकृत-भाषा का उन्होंने गहन अध्ययन किया तथा उसी मे उन्होने यावज्जीवन साहित्य-रचना की। जीवन की यथार्थता का चित्रण, भाषा की सरलता, सहज वर्णन-शैली एव मार्मिक अनुभूतियो से ओत-प्रोत रहने के कारण वह साहित्य इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रान्तीय, भाषाई एव भौगोलिक सीमाएँ स्वत ही समाप्त हो गईं। सर्वत्र उसका प्रचार हुआ। आज भी पूर्व से पश्चिम एव उत्तर से दक्षिण कही भी जाएँ, आचार्य कुन्दकुन्द सभी के अपने हैं। उनके लिए न दिशाभेद है, न भाषाभेद और न प्रान्तभेद, न वर्गभेद और न ही वर्ण-भेद।

इस प्रकार एक दाक्षिणात्य सन्त ने अपने एक भाषा-प्रयोग से समस्त राष्ट्र को एकवद्ध कर चमत्कृत कर दिया। आधुनिक प्रसग मे भाषा-प्रयोग के माध्यम से राष्ट्र को जोड़े रखने का इससे वडा उदाहरण और कहाँ मिलेगा?

ब्रजभाषा की समृद्धि के लिए कुन्दकुन्द साहित्य के अध्ययन की अत्यावश्यकता

शौरसेनी-प्राकृत के क्षेत्र से यदि कुन्दकुन्द को पृथक् कर दिया जाय,

तो उसकी उतनी ही क्षति होगी, जितनी की शौरसेनी-प्राकृत से उत्पन्न ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास को पृथक् कर देने से हिन्दी साहित्य की। शौरसेनी-प्राकृत तथा ब्रजभाषा सहित उत्तर भारत की प्रमुख आधुनिक भाषाओ का परस्पर मे माँ-बेटी का सम्बन्ध है। अत हिन्दी-साहित्य, विशेषतया ब्रजभाषा के साहित्य, को यदि उत्तरोत्तर समृद्ध बनाना है तो कुन्दकुन्द की भाषा एव साहित्य का अध्ययन एव प्रचार-प्रसार करना ही होगा।

5. कुन्दकुन्द-साहित्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

जैसा कि पूर्व मे कहा जा चुका है कि आचार्य कुन्दकुन्द युग-प्रधान के रूप मे माने गए हैं। उन्होने मानव-जीवन को अमृत-रस मे सिंचन करने हेतु अध्यात्म-रस का जैसा अजस्र स्रोत प्रवाहित किया, वह भारतीय-चिन्तन के क्षेत्र मे अनुपम है। जीवन एव जगत् तथा जड एव चेतन का गम्भीर अध्ययन, मानव-मनोविज्ञान का अद्भुत विश्लेषण और प्राणिमात्र के प्रति उनकी अविरल करुणा की भावना अभूतपूर्व है। यही कारण है कि प्राच्य एव पाश्चात्य चिन्तको ने उन्हे मानवता का महान् प्रतिष्ठाता माना है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने लगभग छयान्नवे वर्ष के आयुष्य मे पूर्वोक्त अनेक रचनाओ का प्रणयन किया, जिनका मूल विषय द्रव्यानुयोग एव चरणानुयोग है। यद्यपि इस प्रकार का साहित्य विचार-प्रधान होने के कारण बहुत अधिक लोकप्रिय नही होता क्योकि सामान्य-जनो का उसमे सहज-प्रवेश नही हो पाता। किन्तु कुन्दकुन्द की यह विशेषता है कि उन्होंने अपनी समस्त रचनाओ मे इतनी सरसता एव मधुरता घोल दी और उसमे समकालीन लोक-प्रचलित सरल भाषा और दैनिक लौकिक जीवन के उदाहरण-प्रसगों से उसे इस प्रकार सनाथ किया है कि आबाल-वृद्ध नर-नारी सभी उसका रसास्वादन कर अघाते नही।

इसमे सन्देह नहीं कि पिछले लगभग 4-5 दशको मे कुन्दकुन्द साहित्य का विस्तृत अध्ययन, तुलनात्मक चिन्तन एव मनन तथा शोध और प्रकाशन हुआ है। किन्तु इन अध्ययनो का मुख्य दृष्टिकोण दर्शन एव अध्यात्म तक

ही सीमित रहा है। यह आश्चर्य का विषय है कि अभी तक अध्येताओ का ध्यान कुन्दकुन्द-साहित्य के सास्कृतिक मूल्याकन की ओर नही गया। अत कुन्दकुन्द की रचनाओ मे उपलब्ध कुछ भौगोलिक एव सास्कृतिक सन्दर्भों पर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह तथ्य है कि कोई भी कवि साहित्य-लेखन के पूर्व अपने चतुर्दिक व्याप्त जड और चेतन का गम्भीर अध्ययन ही नही करता, वल्कि उससे साक्षात्कार करने का प्रयत्न भी करता है। तभी वह अपने कवि-कर्म मे सर्वांगीणता तथा चमत्कार-जन्य सिद्धि प्राप्त कर पाता है। आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य का अध्ययन करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन के क्रम मे इस वात को ध्यान मे रखना आवश्यक है कि यद्यपि कुन्दकुन्द ने प्रसग-प्राप्त लौकिक तथ्यो के सकेत अथवा उल्लेख भले ही विध्यर्थक न किये हो और वे निषेधार्थक ही हो, फिर भी उन्होने अपने सिद्धान्तो के स्पष्टीकरण हेतु कुछ लौकिक शव्दावलियो एव उदाहरणो को प्रस्तुत किया है और सस्कृत-टीकाकारो ने कुन्दकुन्द के हार्द को ध्यान मे रखते हुए ही उनका विश्लेषण किया है। यहाँ पर सन्दर्भित सामग्री का उपयोग केवल यह वतलाने के लिए किया जा रहा है कि कुन्दकुन्द एकागी नही, वहुज्ञ थे। दार्शनिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र मे उनकी जितनी पैंठ थी, लौकिक ज्ञान मे भी उतनी ही पैंठ थी। अत उनकी रचनाओ मे प्राप्त कुछ लौकिक सन्दर्भों पर आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे यहाँ सक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है—

समकालीन भारतीय भूगोल एव प्राचीन जैन तीर्थभूमियाँ

आचार्य कुन्दकुन्द के 'दशभक्त्यादि-सग्रह' मे सग्रहीत निर्वाण-काण्ड को ही लिया जाय, उसमे उन्होंने समकालीन देश, नगर, नदी एव पर्वतो का गेय-शैली मे जितना सुन्दर अकन किया है, वह अपूर्व है।[1] जैन-तीर्थों के इतिहास की दृष्टि से तो उसका विशेष महत्त्व है ही, प्राच्य-भारतीय भूगोल की दृष्टि से भी वह कम महत्त्वपूर्ण नही। यह ध्यातव्य है कि आचार्य

1. निर्वाणकाण्ड, गाथा 1—18

कुन्दकुन्द ने परम्परा प्राप्त जैन तीर्थ-भूमियो के रूप मे जिस भारतीय भूगोल की जानकारी दी है, वह ईसा पूर्व की प्रथम सदी की है। उन्होने पर्वतराज हिमालय के गर्वोन्नत भव्य-भाल कैलाश पर्वत से लेकर जम्मू कश्मीर तक तथा गुजरात के गिरनार, दक्षिण के कुन्थलगिरि, पूर्वी भारत के सम्मेदगिरि तथा दक्षिण-पूर्व की कोटिशिला के चतुष्कोण के बीचोबीच लगभग 40 प्रधान नगरो, पर्वतो, नदियो एव द्वीपो के उल्लेख किए हैं। उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—

उत्तर भारत—हस्तिनापुर, वाराणसी, मथुरा एव अहिच्छत्रा (नगरी), तथा अष्टापद (कैलाश-पर्वत)।

पश्चिम भारत—लाटदेश, पलहोडी, (वर्तमान फलौंदी), वडग्राम, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत), गजपन्था, शत्रुजयगिरि, तुगीगिरि (पर्वत) आदि।

मध्य भारत—अचलपुर, वडवानी, वडनगर (नगर), मेढगिरि, पावागिरि, सिद्धवरकूट, चूलगिरि, रेशिन्दीगिरि, द्रोणगिरि, सोनागिरि, चेलना नदी एव रेवा नदी।

पूर्व भारत—चम्पापुरी, पावापुरी, सम्मेदशिखर, लोहागिरि (लोहरदग्गा)।

दक्षिण भारत—कलिंग देश, वशस्थल, तारवर (नगर), कुन्थलगिरि, कोटिशिला, नागहृद।

(सम्भवत) पश्चिमोत्तर भारत—(जो आजकल पाकिस्तान मे है) पोदनपुर, आशारम्य।

कुन्दकुन्द एव कालिदास

भारत पर चीनी आक्रमण एवं पण्डित नेहरू के कथन के सन्दर्भ मे—

इस प्रसग मे यहाँ यह ध्यातव्य है कि पिछले समय सन् 1962 मे जब चीन ने भारत पर पहला आक्रमण किया था और हिमालय के कुछ भाग को उसने चीनी-क्षेत्र घोषित किया था, तब तत्कालीन प्रधानमन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू ने बहुत ही ओजस्वी स्वर मे महाकवि कालिदास (5वी सदी) की "अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज '

जैन सम्राट खारवेल ने उत्तर एव दक्षिण भारत पर पराक्रमपूर्ण आक्रमण भी किए थे तथा जैनधर्म का प्रचार भी किया था।

इसके अतिरिक्त उसने अखिल भारतीय स्तर पर एक विराट जैन-सम्मेलन का कुमारीपर्वत (उदयगिरि-खण्डगिरि) पर आयोजन किया था और उसमे उसने चतुर्विध सघ को ससम्मान आमन्त्रित कर मौर्यकाल मे उच्छिन्न चौसट्ठी अग-सप्तक के चतुर्थ भाग को पुन प्रस्तुत करवाया था। मन्त्रमुग्ध कर देने वाले उस सम्मेलन के वातावरण से उसे जीव एव देह के भेद-विज्ञान का अनुभव हो गया था।

खारवेल जैसे पराक्रमी सम्राट के सहसा ही हृदय-परिवर्तन सम्बन्धी इस तथ्य ने समस्त जैनधर्मानुयायियो पर आगामी अनेक वर्षों तक अमिट छाप छोडी होगी।

कुन्दकुन्द भी खारवेल के उक्त राजनैतिक एव जैनधर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों से अवश्य ही सुपरिचित रहे होंगे और सम्भवत प्रेरित होकर छिन्न-भिन्न दृष्टिवादाग के उद्धार का प्रयत्न भी उन्होने किया होगा। इस तथ्य से इस वात की भी पुष्टि होती है कि कुन्दकुन्द ने षट्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डो पर 'परिकर्म' नाम की टीका लिखी होगी, जो या तो राजनीतिक उथल-पुथल मे लुप्त हो गई अथवा देश विदेश के किसी प्राचीन शास्त्र-भण्डार मे छिपी पडी है और अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रही है।

3 कुन्दकुन्द काल मे शुग-राज्यकाल की समाप्ति हुई और पश्चिमोत्तर भारत मे शको के आक्रमण प्रारम्भ हुए। वे क्रमश दक्षिण-भारत की ओर बढते गए। इन आक्रमणो के कारण भारत का सामाजिक एव राजनीतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। श्रमणत्व की सुरक्षा एव उसके उद्धार के लिए चिन्तित आचार्य कुन्दकुन्द को इसकी जानकारी अवश्य रही होगी, ऐसा अष्टपाहुड-साहित्य एव रयणसार के अध्ययन से प्रतीत होता है। आध्यात्मिक सन्त होने के कारण भले ही उनका राजनयिको से सम्पर्क न रहा हो, किन्तु राजतन्त्र की परम्पराओ एव व्यवस्थाओ सम्बन्धी जो सार्वजनिक प्रभावक शब्दावलियाँ थी, वे प्रवुद्ध सामाजिको एव साहित्यकारो को ज्ञात रही होगी। यही कारण है कि कुन्दकुन्द ने अध्यात्म के गहरे

वस्त्र-प्रकार

कुन्दकुन्द भले ही अखण्ड दिगम्बर मुनि थे, किन्तु एक उदाहरण मे देखिए, उन्होने अपने समय के वस्त्रो का कैसा वर्गीकृत उल्लेख किया है।[1] उनके अनुसार उस समय भारत मे पांच प्रकार के वस्त्रो का प्रचलन था—

(1) अडज (अर्थात् कीडो द्वारा निर्मित धागे के बने हुए अर्थात् रेशमी वस्त्र)।

(2) वोडज (अर्थात् कपास द्वारा निर्मित सूती वस्त्र)।

(3) रोमज (अर्थात् जानवरो के रोम से बनाए गए ऊनी वस्त्र)।

(4) वक्कज (अर्थात् पेड की छाल द्वारा बनाए गए वल्कल वस्त्र)।

(5) चर्मज (अर्थात् मृग, व्याघ्र आदि के चर्म से बनाए गए वस्त्र)।

एक स्थान पर आचार्य कुन्दकुन्द ने सुई-तागे का भी लौकिक उल्लेख किया है[2]। इससे सकेत मिलता है कि कुन्दकुन्द-काल मे सिलाई तथा कढाई की हस्तकला पर्याप्त लोकप्रिय थी और घरेलू उद्योग-धधो मे उसका प्रमुख स्थान था।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षण के लिए कवि ने बाल्यावस्था को उपयुक्त बतलाया है[3]। उन्होंने कहा है कि समाज के बच्चो के लिए प्रारम्भ मे ही निम्न विषयो का शिक्षण देना चाहिए—

(1) व्याकरण (भाषा के शुद्ध प्रयोग एव भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से),

(2) छन्द (पद्यों के वर्ण एव मात्रा के वैज्ञानिक अध्ययन, सस्वर पाठ एव उसे सरस और गेय बनाने की दृष्टि से)।

---

1 भावपाहुड, गाथा-79-81 (सस्कृत टीका मे दृष्टव्य)

2 सूत्रपाहुड, गाथा-3

3 शीलपाहुड, गाथा-15-16

(3) न्याय (तर्कणा-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए),

(4) धर्म (जीवन मे आचार एव अध्यात्म के जागरण के लिए),

(5) दर्शन (विचारो की गहन अनुभूति के लिए),

(6) गणित (राष्ट्रीय एव सामाजिक व्यवहार के सचालन के लिए)।

इसी प्रकार निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालकार,नाटक, पुराण आदि के अध्ययन पर भी जोर दिया जाता था[1]।

लगता है कि कुन्दकुन्द के समय मे लेखन-सामग्री आज के समान प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध नही थी। स्याही एव मोरपंख अथवा काष्ठ-निर्मित कलम सम्भवत व्यय-साध्य होने के कारण विशिष्ट-कोटि के लेखको को ही उपलब्ध रहती होगी। किन्तु सामान्य जनो के लिए खडिया (chalk) से दीवाल अथवा पत्थर पर लिखने की परम्परा थी।[2]

विविध दार्शनिक मत

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने वर्णन-प्रसगों मे समकालीन प्रचलित विविध दार्शनिक मतो के उल्लेख किए हैं। उनसे विदित होता है कि उन्होने उनका भी अध्ययन किया था। उस समय भारत मे 363 दार्शनिक मत प्रचलित थे।[3] उनका वर्गीकरण कुन्दकुन्द ने इस प्रकार किया है —

1 क्रियावादी—180 मत

2 अक्रियावादी—84 मत

3 अज्ञानी— 67 मत

4 वैनयिक— 32 मत

363 मत

दु ख-प्रकार

आचार्य कुन्दकुन्द का कथन है कि "यह ससार केवल दु खो का ही घर

---

1 रयणसार, गाथा 143

2 समयसार, गाथा 356, 365

3 भावपाहुड, गाथा-135

सकेत किया है। उसके अनुसार शरीर मे तेल लगाकर धूलि वाले स्थान मे दण्ड-बैठक करना एव मुग्दर आदि अस्त्रो के द्वारा व्यायाम करना, उसके साथ ही साथ केला, तमाल, अशोक आदि वृक्षो के साथ अपनी शक्ति को आजमाने की प्रथा का सकेत दिया है।[1]

खाद्य एव पेय पदार्थ

भोजन-वर्णन मे आचार्य कुन्दकुन्द ने किसी विशेष अनाज का उल्लेख नही किया है लेकिन तिल[2] का उल्लेख अनेको बार किया है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय भोजन मे तिल अपना विशेष स्थान रखता था। तिल बहुत ही गुणकारी पदार्थ होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि तिल के तेल तथा तिल के बने हुए मोदक आदि व्यञ्जनो का प्रयोग सार्वजनीन रहा होगा। पेय पदार्थों मे उन्होंने गुड मिश्रित दूध[3] और इक्षुरस[4] का उल्लेख किया है। श्रमण सस्कृति मे इक्षुरस को अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक एव पवित्र पेय माना गया है। आदिनाथ तीर्थंकर ने प्रथम पारणा मे इक्षुरस का ही आहार ग्रहण किया था।

उद्योग-धन्धे

उद्योग-धन्धो मे कवि ने स्वर्णशोधन विधि[5] रत्ननिर्माण[6], विषौषधि-निर्माण[7], आभूषण[8]-निर्माण, कृषि के यन्त्र[9], रहट बनाने तथा दात्र (हँसिया)[10]

1 समयसार, गाथा-236-246

2 सुत्तपाहुड, गाथा-18, बोधपाहुड, गाथा-54, शीलपाहुड, गाथा-24

3 भावपाहुड, गाथा-137

4 शीलपाहुड, गाथा-24

5 मोक्षपाहुड, गाथा-24, शीलपाहुड, गाथा-9

6 प्रवचनसार, गाथा-30, पचास्तिकाय, गाथा-33

7 शीलपाहुड, गाथा-21

8 समयसार, गाथा-130-131, प्रवचनसार, गाथा 10

9 शीलपाहुड, गाथा-26

10 पचास्तिकाय, गाथा-48

निर्माण, भवन[1] निर्माण, मूर्ति[2] निर्माण, मोम निर्माण[3] आदि के उल्लेख किए है।

मनोरजन के साधन

मनोरजन के साधनो मे कवि ने गोष्ठी[4] एव जन्त्र[5] (अर्थात् चौपड) का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार की गोष्ठियो का आयोजन उसी प्रकार किया जाता था, जिस प्रकार कि आज-कल कवि-सम्मेलन, सगीत-सम्मेलन या साहित्यिक सम्मेलनो का आयोजन किया जाता है।

कुन्दकुन्द-साहित्य मे कथा-वीजो के स्रोत

आचार्य कुन्दकुन्द ने यद्यपि कथा-साहित्य अथवा प्रथमानुयोग-साहित्य नही लिखा, क्योकि उनका समाज प्रवुद्ध था। कथा-कहानियो के माध्यम से सिद्धान्तो को समझाने की आवश्यकता तो केवल मन्द-बुद्धि वाले लोगो के लिए ही होती है। फिर भी कुन्दकुन्द ने कथाओ का वर्गीकरण अवश्य किया है। उनके अनुसार ससार की कथाओ को 4 वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है[6] —

(1) भक्त-कथा—(भक्ति की प्रेरणा जागृत करनेवाली कथा)
(2) स्त्री-कथा—(स्त्रियो के प्रति आसक्ति जागृत करनेवाली कथा)
(3) राज-कथा)—(कपट-कूट एव राजनीति का विश्लेपण करने वाली कथा)
(4) चोर-कथा—(चौर्य-कला का निरूपण करनेवाली कथा)

---

1 वोधिपाहुड, गाथा 42-43
2 वोधिपाहुड, गाथा-3-4
3 भक्त्यादिसग्रह 2/10
4 प्रवचनसार, गाथा-66
5 लिंगपाहुड, गाथा-10
6 वारसअणुवेक्खा, गाथा-53

उल्लेख किया है। इससे चोरी एव डकैती होने तथा इस प्रकार के घृणित समाज-विरोधी कार्य करने वालो के लिए वेढी-वर्णन के माध्यम से कठोर-दण्ड-व्यवस्था का भी सकेत किया है। लिंग-पाहुड मे एक शिथिलाचारी साधु की भर्त्सना हेतु बँधुआ मजदूर का उदाहरण दिया गया है। विदित होता है कि कुन्दकुन्द-काल मे बँधुआ-मजदूरी की प्रथा थी।

इस प्रकार कुन्दकुन्द की रचनाओ मे उपलब्ध राजनीतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक सन्दर्भो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया। स्थानाभाव के कारण यहाँ केवल एक सक्षिप्त झांकी मात्र प्रस्तुत की गई है। यदि मधुकरी-वृत्ति से उनका पूर्ण सग्रह कर उसका समकालीन भारतीय इतिहास एव सस्कृति के परिप्रेक्ष्य मे तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, तो एक प्रामाणिक शोध-प्रबन्ध तैयार हो सकता है।

६. आचार्य कुन्दकुन्द . आधुनिक भौतिक विज्ञान के आइने मे

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था एव उसका वैशिष्ट्य

वैज्ञानिक-साहित्य की दृष्टि से आचार्य कुन्दकुन्द के दो ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—पचास्तिकायसग्रह एव समयसार। लेखक ने इन ग्रथो मे परम्परा-प्राप्त ज्ञान-विज्ञान का सुन्दर विश्लेषण किया है। उनके कुछेक सिद्धान्त तो आधुनिक वैज्ञानिक खोजो से अभी भी वहुत आगे हैं। जैसे जीव एव पुद्गल-द्रव्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन। आधुनिक भौतिक-शास्त्री जिस षट्कोणी 'क्वार्क मॉडल' की खोज मे व्यस्त है तथा जिसके अभी तक के स्थापित सिद्धान्तो मे वे एकस्वर नही हो सके हैं, आचार्य कुन्दकुन्द एव उनके परवर्ती सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य सहस्राब्दियो पूर्व ही अपनी रचनाओ मे उनका सुस्पप्ट विश्लेपण कर चुके हैं।

कुन्दकुन्द आदि अनेक आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कुछ विचार आधुनिक विज्ञान के समकक्ष भी हैं, जैसे पुद्गल-परमाणुवाद। जवकि कुछ सिद्धातो की कही-कही आशिक रूप में समकक्षता सिद्ध हुई है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य एव आकाश-द्रव्य। आगे इनकी सक्षिप्त चर्चा की जायगी।

द्रव्य (Substancc)-परिभाषा

कुन्दकुन्द ने विश्व मे व्याप्त समस्त द्रव्यो (Substanccs) को मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त किया है—जीव एव अजीव अथवा चेतन एव जड (Soul and Non-soul)। द्रव्य की परिभाषा मे उनका कथन है

ध्रुवत्व (Permanence) गुण वर्तमान रहता है। इस प्रसग मे Democritus का यह कथन विचारणीय है[1]—

"Nothing can never become something and something can never become anything"

जीव-द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

प्राचीन एव नवीन प्रयोगशालाओ मे

आचार्य कुन्दकुन्द आदि ने जीव को द्रव्य माना है और बनाया है कि आत्मा, चैतन्य एव ज्ञान ये सभी जीव के पर्यायवाची नाम हैं। उमे अजर-अमर भी कहा गया है। व्यवहार मे जो यह कहा जाता है कि 'गुणसेन मर गया' वह लोक-व्यवहार की दृष्टि से तो ठीक है, किन्तु निश्चयनय से 'गुणसेन' को मृत कहना उपयुक्त नही, क्योकि आत्मा तो निश्चय ही अजर-अमर है। हाँ, यह कहा जायगा कि 'गुणसेन की मनुष्य-पर्याय बदल गई।'

इस जीववाद अथवा आत्मवाद पर प्राचीनकाल से ही विस्तृत ऊहापोह चलता आ रहा है। विचारको में कभी-कभी अपने मत के समर्थन मे उग्रता भी देखी गई है। उनमे परस्पर मे विभाजन भी होता रहा। एक पक्ष आत्मवादियो मे बँट गया और दूसरा अनात्मवादियो मे। अपने-अपने पक्ष के समर्थन मे उन विचारको ने पिछली लगभग दो सहस्राब्दियो मे एक विशाल दार्शनिक साहित्य का निर्माण भी कर दिया। मूल समस्या का सर्व-सम्मत समाधान फिर भी दृष्टिगोचर न हो सका।

जीवात्म-विचार के क्षेत्र मे

जैनाचार्य आधुनिक विज्ञान से बहुत आगे

प्राकृत एव सस्कृत के जैन-साहित्य मे भी द्रव्य-वर्णन के प्रसग मे जीव-द्रव्य का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार किया गया है और उसकी विशेषता यह है कि

1. महावीरस्मृति ग्रन्थ, पृ० 117

सहस्राब्दियो के अनवरत चिन्तन के बाद भी जैन दार्शनिको मे मतभेद दृष्टिगोचर नही होता। कुन्दकुन्द ने जीव की परिभापा देते हुए कहा है—

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसजुत्तो ॥पचास्ति 27

अर्थात् जीव ही आत्मा है, चैतन्यगुणवाला है, ज्ञान है, प्रभु (स्वतन्त्र) है, (कर्मों का-) कर्ता तथा भोक्ता है, स्वदेहप्रमाण है, अमूर्त तथा कर्मयुक्त है। ममयसार मे कुन्दकुन्द ने इसे और भी स्पष्ट किया है। यथा—

अरसमरूवमगध अव्वत्तं चेदणागुणमसद्द।
जाण अलिंगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण ॥ समय० 2/11

अर्थात् जो रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित, इन्द्रियो द्वारा अगोचर, चेतनागुणयुक्त, शब्दरहित, इन्द्रियो द्वारा अग्राह्य एव निराकार है, उसे जीव जानो।

आधुनिक विज्ञान-जगत् ने भी जीवात्मा की खोज का अथक प्रयत्न किया है। उन्होने उसे देखने अथवा पकड़ने के लिए एक विशेष रूप से निर्मित सयन्त्र का प्रयोग भी किया, किन्तु असफलता ही हाथ लगी। एक वार उन्होने एक पारदर्शी टकी मे जीवित प्राणी को वन्द कर उसे चारों ओर से सील कर दिया। उसमे वह प्राणी तो मर गया किन्तु उसमे से निकले हुए जीव या आत्मा का कोई भी चिह्न कही भी दिखाई नही दिया।

कैकेय-नरेश राजा प्रदेशी एव श्रमणकुमार केशी का ऐतिहासिक आख्यान

यह कहना कठिन है कि आधुनिक वैज्ञानिको ने प्राचीन प्राकृत जैन साहित्य का अध्ययन किया या नही। यदि किया होता तो वहुत सम्भव है कि वे अपनी शक्ति, ममय, एव द्रव्य के वहुत कुछ अपव्यय से वच जाते। क्योंकि आज से लगभग 2838 वर्ष पूर्व (अर्थात् ई० पू० 849 के आस पास) की एक वहुत ही रोचक घटना का वर्णन रायपसेणियसुत्त (रा- प्रश्नीयसूत्र) नामक जैनागम मे मिलता है। यह घटना कैकेय देश (जहाँ

हैं। अत हे राजन्, परलोक की सत्ता अवश्य है तथा शरीर एव आत्मा अभिन्न हो ही नही सकते। निश्चित रूप से वे भिन्न-भिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी धार्मिक सच्चरित्र लोग स्वर्ग मे जाकर विक्रिया-ऋद्धि से मर्त्यलोक मे शीघ्र ही आकर अपने परिवार के लोगो को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा क्यो नही देते? चूंकि ऐसा देखा नही जाता, इसीलिए हे श्रमण कुमार, प्रतीत होता है कि परलोक भी नही है तथा शरीर एव आत्मा अभिन्न हैं।

श्रमणकुमार केशी स्वर्ग मे जाते ही प्राणी वहाँ के भोग-विलास मे इतने रम जाते हैं कि फिर उन्हे मर्त्यलोक मे लौटकर घूमने का समय नही मिलता। चाहकर भी आ नही पाते, क्योकि मर्त्यलोक मे उन्हे बहुत दुर्गन्ध आती है, इस कारण आना भी नही चाहते। किन्तु परलोक अवश्य है और शरीर एव आत्मा निश्चय ही भिन्न है।

राजाप्रदेशी एक जीवित अपराधी को लोहे की टकी मे वन्द कर देने तथा कुछ दिनो के वाद उसे निकालकर देखने से वह मरा हुआ पाया गया। टकी का परीक्षण करने मे ऐसा कोई द्वार या छिद्र नही पाया गया, जहाँ से उसका जीव निकला हो। यदि शरीर से जीव भिन्न होता, तो उसके निकलने का कोई-न-कोई सकेत या चिह्न अवश्य ही होता किन्तु उसके न मिलने से विदित होता है कि शरीर एव आत्मा अभिन्न है।

केशी जिस प्रकार अभेद्य-गुफा मे दरवाजा वन्द कर देने पर भी तेज वजते हुए नगाडे की आवाज, विना किसी तोड-फोड के सहज मे ही वाहर निकल आती है, उसी प्रकार प्राणी के मरने पर जीव (आत्मा) भी अप्रतिहत-गति से वाहर निकल जाता है। क्योकि

पर्वत, चट्टान एव लोहे की सुदृढ बन्द टकी भी उस अरूपी-आत्मा को निकलने से रोक नही सकती। अत हे राजन्, शरीर एव आत्मा निश्चय से भिन्न हैं।

राजा प्रदेशी एक सुदृढ अभेद्य लोहे की टकी मे जीवित चोर को बन्द कर दिया गया। उसमे वह तो मर गया, किन्तु उसके शरीर मे अनेक कीडे उत्पन्न हो गये। छिद्र-रहित उस टकी मे वे घुसे कहाँ से होगे? उस अभेद्य टकी मे जीवो के गमनागमन के सकेत-चिह्न न मिलने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शरीर एव आत्मा अवश्य ही अभिन्न हैं।

केशी जिस प्रकार, हे राजन्, अभेद्य लोहे की टकी मे चोर को बन्द कर देने तथा उसके मरने के बाद जिस प्रकार उसके जीव (आत्मा के निकलने का कोई चिह्न दिखाई नही पडता। उसी प्रकार उसके मृत-शरीर मे भी अप्रतिहत-गति से जीवो का प्रवेश हो जाता है और उन्हे भी कोई देख नही पाता। इसी से स्पष्ट है कि परलोक भी है तथा शरीर और आत्मा भिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी एक तरुण व्यक्ति जैसा कार्य कर सकता है, वैसा ही कार्य एक बालक नही कर सकता। जैसे, एक तरुण व्यक्ति पाँच बाण एक साथ छोड सकता है, किन्तु बालक निश्चित रूप से नही छोड सकता। इसी प्रकार हे श्रमणकुमार, तरुण एव वृद्ध व्यक्तियो को समान रूप से भारी बोझ उठा सकना चाहिए किन्तु तरुण तो उसे उठा सकता है, वृद्ध नही। इसी से सिद्ध है कि शरीर और आत्मा अभिन्न हैं।

केशी : हे राजन्, बालक एव तरुण अथवा वृद्ध अथवा तरुण व्यक्ति की भौतिक कार्य-क्षमता का मुख्य कारण

शरीर रूपी उपकरण है। उपकरण के शिथिल होने से वालक तरुण जैसा और वृद्ध भी तरुण जैसा कार्य नही कर मकता। इसमे आत्मा का उससे क्या सम्वन्ध ? तरुण व्यक्ति को भी यदि जीर्ण-शीर्ण धनुप-प्रत्यचा-वाण दे दिया जाय, तो वह तरुण भी पाँच वाण एक साथ नही छोड सकता। अत हे प्रदेशी, तुम्हारा तर्क सदोष है। शरीर और आत्मा निश्चय ही भिन्न है।

राजा प्रदेशी मृत शरीर एव जीवित शरीर के वजन मे कोई अन्तर नही पाया गया। यदि शरीर एव आत्मा भिन्न-भिन्न होते, तो आत्मा का वजन जुड जाने से जीवित व्यक्ति को मृत व्यक्ति से अधिक वजनदार होना चाहिए किन्तु ऐसा नही देखा जाता। अत इस प्रयोग के निष्कर्ष से हे कुमार, ऐसा विदित होता है कि शरीर तथा आत्मा अभिन्न हैं।

केशी हे राजन्, जिस प्रकार चमडे की मशक मे हवा भर-कर तौलने तथा उस हवा को निकालकर तौलने से उसके वजन मे कोई अन्तर नही होता, उसी प्रकार मृत अथवा जीवित व्यक्ति के शरीर के वजन मे भी अन्तर कैसे होगा ? अत निश्चय ही शरीर और आत्मा भिन्न हैं।

राजा प्रदेशी हे कुमार श्रमण, व्यक्ति के क्रमश अग-अग काट डालने पर भी कही भी उसमे आत्मा-जीव दिखाई नही देता। इसी से सिद्ध है कि शरीर और आत्मा अभिन्न हैं।

केशी प्राणियो मे जीव-आत्मा उसी प्रकार अदृश्य रूप मे छिपा रहता है जिस प्रकार काष्ठ मे अग्नि। काष्ठ को टुकडो टुकडो मे काट डालने पर भी क्या उसमे कही अग्नि दिखलाई पडती है ? उसी प्रकार प्राणियो

के अग-प्रत्यगो के छिन्न-भिन्न कर डालने पर भी आत्मा दिखलाई नही पडती। अत शरीर तथा आत्मा अभिन्न ही हैं।

राजा प्रदेशी क्या आत्मा को हथेली पर रखे गए आँवले की तरह दिखाया जा सकता है ?

केशी आत्मा-जीव को तो केवलज्ञानी सर्वज्ञ ही देख सकते हैं। छद्मस्थ या सामान्य चर्मचक्षु उसे नही देख सकते।

राजा प्रदेशी हे श्रमणकुमार, आत्मा की आकृति क्या है ?

केशी हे राजन्, आत्मा तो निराकार है। अगुरुलघु-गुण के कारण वह शरीर के प्रमाण के अनुसार चीटी या हाथी के शरीर-प्रमाण बन जाती है।

जीव-द्रव्य की सफल खोज के लिए आधुनिक-वैज्ञानिको को जैन-दर्शन का अध्ययन आवश्यक

राजा प्रदेशी एव कुमारश्रमण केशी का उक्त सवाद बडा ही महत्त्वपूर्ण एव ऐतिहासिक है। भले ही उस युग मे आज जैसी खर्चीली विस्तृत प्रयोग-शालाएँ न रही हो, फिर भी प्रयोग की चातुर्य-पूर्ण प्रक्रिया अवश्य थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्राकृत-जैन-साहित्य के इन वैज्ञानिक प्राचीन अनुसन्धानो तथा शास्त्रार्थो से युक्त अशो का विदेशी-भाषाओ मे अनुवाद कर ससार के वैज्ञानिको को भेजा जाय, जिससे अनुप्राणित होकर वे उस सामग्री का भी उपयोग कर सकें।

कुछ जैन-वैज्ञानिको के सराहनीय कार्य

यह प्रसन्नता का विषय है कि 4-5 दशको मे कुछ जैन-वैज्ञानिको का ध्यान जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित उक्त द्रव्य-व्यवस्था की ओर गया है और उन्होने आधुनिक-विज्ञान के साथ-साथ उसके तुलनात्मक अध्ययन करने के प्रयत्न किए हैं। ऐसे वैज्ञानिको मे सर्वश्री प्रो० डॉ० दौलतसिंह कोठारी, मुनिश्री नगराज जी, डॉ० नन्दलाल जैन, डॉ० दुलीचन्द्र जैन एव

श्री झवेरी आदि प्रमुख हैं। उन्होंने समय-समय पर तुलनात्मक निबन्ध आदि लिखकर विद्वानो-वैज्ञानिको को इस दिशा मे विचार करने के लिए पर्याप्त प्रेरणाएँ प्रदान की है। उन्होने जीव-आत्मा की खोज के प्रसग मे बतलाया है कि आधुनिक विज्ञान भले ही आत्म-तत्त्व के साक्षात्कार मे सफल न हो सका हो, किन्तु उनकी वर्तमान खोजो से यह अवश्य ही ज्ञात हुआ है कि जब कोई प्राणी जन्म लेता है, तो उसके साथ एक विद्युत्-चक्र (Electric-charge) रहता है, जो मृत्यु के समय लुप्त हो जाता है।

इस विषय मे डॉ० नन्दलाल का कथन है कि Electric-charge तो Conservation of energy के सिद्धान्त की दृष्टि से नाशवान नही है। तब फिर वह charge जाता कहाँ है[1] ?" इस समस्या के समाधान के लिए भी प्रयोगशालाओ मे पुन सयन्त्रो का निर्माण किया जा रहा है। हो सकता है कि इन सयन्त्रो से उक्त समस्या का कुछ समाधान निकल सके। किन्तु विश्वास यही किया जाता है कि ये नवीन यन्त्र भी जिस शक्ति का पता लगावेंगे, वह आत्मा नही होगी। क्योकि वह तो निश्चित रूप से अमूर्त्तिक, अरूपी है। हाँ, उस शक्ति की तुलना तैजस-शरीर (Electric Body) से अवश्य की जा सकती है, जो कि आत्मा से घनिष्ठ सम्वन्ध रखता है। फिर भी आत्मा की खोज के प्रयास मे इस तथ्य की खोज भी अपना महत्त्व रखती है।

जैन-दर्शन-विज्ञान के क्षेत्र मे उक्त तैजस शरीर भी कोई नवीन खोज नही है। क्योकि जैनाचार्यो ने पाँच प्रकार के शरीरो के वर्णन मे स्वय उसे चौथा स्थान दिया है और सहस्राब्दियो पूर्व ही उसका विस्तृत विश्लेपण कर दिया है।[2]

Sir O'Loz जैसे कुछ वैज्ञानिको की यह धारणा है कि भले ही आत्मा का साक्षात्कार करने मे विज्ञान असफल रहा हो, फिर भी आत्मा का अस्तित्व होना अवश्य चाहिए। 'Protoplasm is nothing but a viscous fluid which contains every living cell' के सिद्धान्त

1 महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ० 120

2 तत्त्वार्थराजवार्त्तिक 2/36

तथा परमाणु, इनके अतिरिक्त भी जो कुछ भी मूर्त हो, वह सब पुद्गल के भेद के रूप मे जानना चाहिए।

जिसमे स्पर्श, रस, गन्ध एव वर्ण की अपेक्षा ने तथा स्कन्ध पर्याय की अपेक्षा से पूरण एव गलन किया हो, उसे भी पुद्गल (Matter and Energy) माना गया है।[1]

इन पुद्गलो को 4 भेदो मे बाँटा गया है[2]—

1 स्कन्ध—(अनन्तानन्त परमाणुओं से निर्मित होने पर भी जो एक हो)

2 स्कन्ध देश— (उपर्युक्त का आधा)

3 स्कन्ध प्रदेश—(उपर्युक्त का भी आधा)

4, परमाणु—(स्कन्ध का अविभागी अर्थात् अन्तिम एक प्रदेश वाला पुद्गलाश) अथवा—जो आदि, मध्य एवं अन्त रहित है, जो केवक एक प्रदेशी है (जिसके दो आदि प्रदेश नही हैं), और जिसे इन्द्रियो द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह विभाग-विहीन द्रव्य परमाणु है।

पुद्गल परमाणु की शक्ति

आधुनिक वैज्ञानिको ने जिस (Matter and energy) का गहन अध्ययन कर समस्त विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया है, वह वस्तुतः पुद्गल ही है। जिस पुद्गल को पूरण-गलन क्रिया वाला बताया गया है, आधुनिक विज्ञान मे उसे ही (Fusion and Fission) तथा (Disintigration) वाला सिद्ध किया गया है। Atom-bomb (परमाणु बम) को Fisson-bomb इसीलिए कहा गया, क्योंकि जब Atom (परमाणु) के कण-कण बिखर जाते हैं (पूर्वोक्त गलन क्रिया) तभी उसमे शक्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार Hydrosion-bomb को Fusoin-bomb इसी

1. पंचास्तिकाय, गाथा-76 (संस्कृत टीका)
2 पचास्तिकाय, गाथा-74

कारण कहा गया है क्योंकि उसमे Atoms (परमाणु) जव परस्पर मे जुडते हैं (पूर्वोक्त पूरण-क्रिया), तव उसमे शक्ति उत्पन्न होती है ।[1]

आज के विशिष्ट पदार्थों मे Uranium and Redium का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैज्ञानिक परीक्षणो से यह सिद्ध हो चुका है कि पूर्वोक्त गलन-क्रिया इन दोनो पदार्थों मे स्वाभाविक रूप से स्वत ही होती रहती है और उससे नवीन पदार्थों का जन्म होता रहता है। वैज्ञानिको ने वतलाया है कि Uranium के एक कण मे Alpha, Beta and Gamma किरणें अप्रतिहत गति से निरन्तर निकलती रहती हैं और लगभग दो अरव वर्षों मे उसका अर्धांश Redium मे वदल जाता है ।[2]

गलन की प्रतिक्रिया Redium मे भी स्वाभाविक रूप से दिन-रात होती रहती है और उसके एक कण का अर्धांश लगभग छह हजार वर्षों मे सीसे (Lead) मे वदल जाता है ।[3]

स्निग्ध (Positive) और रूक्ष (Negative) का बन्ध

आचार्य कुन्दकुन्द ने पुद्गल की परिभापा मे वताया है कि स्निग्ध एव रूक्ष गुणो के कारण परमाणु एक साथ वँधा रहता है।[4] इसका समर्थन आचार्य उमास्वाति ने भी 'स्निग्धरूक्षत्वाद्-वन्ध' नामक सूत्र के माध्यम से किया है।[5] जैनाचार्यों का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त भी आश्चर्यजनक है और आधुनिक वैज्ञानिक खोजो के समकक्ष है। पूज्यपाद स्वामी (5वी सदी ई०) ने लिखा है कि स्निग्ध एव रूक्ष गुण के निमित्त से विद्युत् की उत्पत्ति होती है ।[6]

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि मे उक्त स्निग्ध 'Positive' के अर्थ मे तथा रूक्ष 'Negative' के अर्थ मे लिया गया है। सामान्य भापा मे इसे

1 तीर्थंकर महावीर स्मृतिग्रन्थ, पृ०-275
2-3 वही, पृ० 276
4 पचास्तिकाय, गाथा-81 (सस्कृत टीका)
5. तत्त्वार्थराजवार्त्तिक 5/33
6 सर्वार्थसिद्धि 5/33

'षट्कोणी' (छह कोण वाला) होना चाहिए। कुन्दकुन्द तथा अनेक परवर्ती आचार्यों ने भी उसे षट्कोणी (छह कोण वाला) मानते हुए उसका विस्तृत विवेचन किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है—

> वादरसुहुमगदाण खधाण पोग्गलो त्ति ववहारो।
>
> ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं॥ पचास्ति० 76॥

अर्थात् व्यवहार मे बादर और सूक्ष्म रूप से परिणत स्कन्ध ही पुद्गल है। वे छह प्रकार के होते हैं। तीनो लोक उन्ही से निष्पन्न हैं। 'नियमसार' (गाथा स० 21-23) मे कुन्दकुन्द ने पूर्ण वर्गीकरण करते हुए उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं, जो सक्षेप मे इस प्रकार है—

1 स्थूल-स्थूल—जैसे पृथ्वी, पर्वत, लकडी, पत्थर आदि जो टूटने कटने पर पुन जुड नही सकते। (Solids such as earth, stone etc)

2 स्थूल— जैसे घी, दूध, तेल, पानी आदि तरल पदार्थ, जो बिखरने के बाद पुन स्वत जुड सकते है। (Liquids like butter, water or oil etc)

3 स्थूल-सूक्ष्म—जैसे छाया, धूप, अन्धकार, चाँदनी आदि (स्कन्ध), जो कि स्थूल ज्ञात होने पर भी जिनका छेदन-भेदन करना या हाथो से पकड सकना सभव नही। (Energy which manifests itself in forms of heat, light, electricity and magnetism.)

4 सूक्ष्म-स्थूल—जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, शब्द, वायु आदि जो कि सूक्ष्म होने पर भी स्थूल जैसे प्रतीत होते हैं। (Gases like air and others)

5 सूक्ष्म— जैसे कर्म-वर्गणा आदि (स्कन्ध), जो सूक्ष्म हैं, तथा जो इद्रियो द्वारा अगोचर हैं। (Fine matter which is responsible for thought-activities and is beyond sense-perception)

6 सूक्ष्म-सूक्ष्म—जैसे कर्मवर्गणातीत द्वि-अणुक-स्कन्ध तक के स्कन्ध, जो

जहाज आदि एक भी कदम आगे न बढ पाते, यदि धर्मद्रव्य उनके गमन मे सहायक न हो। यदि धर्मद्रव्य न हो, तो आकाश, पाताल एव मर्त्यलोक मे जीवो एव पुद्गलो का सर्वथा गमनागमन ही रुक जाए।

धर्म-द्रव्य और आधुनिक विज्ञान

उक्त धर्मद्रव्य के गुणो का समर्थन आधुनिक भौतिक-विज्ञान ने भी किया है। इन वैज्ञानिको का कथन है कि प्रकाश-किरणें शून्य मे नही, बल्कि वे आकाश मे व्याप्त हैं तथा Ether of space के जरिए पृथ्वी पर पहुँचती हैं। Ether के विषय से वैज्ञानिको की मान्यता है कि वह (Ether) कोई पदार्थ या दृश्य वस्तु नही है। वह तो सर्वत्र व्याप्त है तथा सभी की गमन-क्रिया मे सहायक है।[1]

उक्त Ether के प्राय सभी गुण धर्मद्रव्य मे वर्तमान हैं। धर्मद्रव्य के समान ही वह अरूपी (Formless) एव वस्तुओ से भिन्न है। धर्मद्रव्य के समान वह भी निष्क्रिय, अनन्त एव आकाशव्यापी और अपौद्गलिक है तथा धर्मद्रव्य के समान ही वह शक्तिशाली है। जैसा कि बतलाया गया है—Ether is not a kind of matter (पुदगल रूपी) Being non-material, its properties are quite unique[2]

अधर्म-द्रव्य (Medium of Rest)

विश्व-व्यवस्था मे जो महत्त्व धर्मद्रव्य का है, वही महत्त्व अधर्म द्रव्य का भी है। अधर्म द्रव्य का तात्पर्य यहाँ अनाचार, दुष्टाचार या साम्प्रदायिक सकीर्णता से नहीं है, बल्कि वह एक पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्द है, जो जीवो एव पुद्गलो को स्थिर करने मे सहायक होता है। जैनाचार्यों के अनुसार यह अधर्म द्रव्य भी अमूर्त, अदृश्य तथा लोकव्यापी है। यह अधर्म-द्रव्य आइस्टाइन के Field of Gravitation के सिद्धान्त से समर्थित है।[3]

---

1 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 278

2. महावीर स्मृति ग्रथ, पृ०123

3. पचास्तिकाय, गाथा-91

लोक-व्यवस्था मे अधर्म-द्रव्य का महत्त्व

अधर्म द्रव्य लोक-व्यवस्था के लिए अत्यावश्यक तत्त्व है। यदि वह न होता तो विश्व का प्रत्येक पदार्थ निरन्तर चलायमान रहता और इस प्रकार लोक मे स्थायित्व नही रह पाता। लोक मे यदि केवल जीव, पदार्थ एव आकाश मात्र ही होते तो वे सभी (अधर्म द्रव्य के अभाव के कारण) अनन्त आकाश मे फैल जाते और इस प्रकार समस्त लोक-व्यवस्था ही गड-बड हो जाती।

तात्पर्य यह कि धर्म द्रव्य (Medium of motion) तथा अधर्म द्रव्य (Medium of rest) ये दोनो ही द्रव्य (Substances) लोक-व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। यद्यपि दोनो ही द्रव्य परस्पर विरोधी है, फिर भी उनमे परस्पर मे किसी प्रकार की टकराहट नही है, क्योकि वे किसी को भी गमन करने अथवा ठहरने के लिए प्रेरणा नही देते या जवरदस्नी नही करते वल्कि जो स्वत ही गमन करते हैं, अथवा जो स्वत ही स्थिर होते हैं, उनके लिए वे अनिवार्य रूप से सहायक अवश्य होते हैं। कुन्दकुन्द कहते हैं—

> ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
> हवदि गदिस्स य पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च॥ पचास्ति०-88॥

अर्थात् धर्मास्तिकाय गमन नही करता और अन्य द्रव्य को भी वह वलात् गमन नही कराता। वह तो जीवो तथा पुदग्लो की गति का उदा-सीन प्रसारक है।

ठीक यही स्थिति अधर्मास्तिकाय की भी है।

आकाश-द्रव्य (Space-substance)

आकाश-द्रव्य भी पारिभाषिक शब्द है। वतलाया गया है कि जो जीव पुदग्ल, धर्म, अधर्म एव काल को अवकाश अर्थात् स्थान-दान दे वही आकाश है।

जैनाचार्यों के कथनानुसार आकाश नित्य, व्यापक एवं अनन्त है।[1] वह

1 पचास्तिकाय, गाथा 91-94

कारण अलोकाकाश को भी नही मानते और अलोकाकाश को माने विना लोक-व्यवस्था वन ही नही सकेगी ।

काल-द्रव्य (Time-substance)

विश्व-व्यवस्था के लिए जैनाचार्यों ने कालद्रव्य को भी अन्य द्रव्यो की भाँति ही विशेप महत्त्व प्रदान किया है । क्योकि वह परिवर्तन का सूचक है और परिवर्तन ही विकास का प्रधान कारण माना गया है ।

कुन्दकुन्द प्रभृति आचार्यों ने सस्कृत एव प्राकृत मे काल-द्रव्य के विपय मे गम्भीर अध्ययन एव विश्लेपण प्रस्तुत किए हैं । उनके अनुसार वह पदार्थों के परिवर्तन मे कुम्भकार-चक्रवत् सहायक कारण है । उसमे उत्पाद, व्यय एव ध्रुवत्व होने के कारण उसे जीवादि के समान ही 'द्रव्य' माना गया है ।

काल का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है —

(1) निश्चयकाल (लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश मे व्याप्त असख्य अविभागी कालाणु), तथा

(2) व्यवहारकाल अर्थात् वह 'समय' जो एक परमाणु या कालाणु अपने पास से दूसरे (Consecutive) परमाणु के पास तक पहुँचने मे लगता है ।

उक्त परिभाषाओ के अनुसार व्यवहार-काल सादि एव सान्त तथा निश्चयकाल अनन्त है, जो ध्रौवत्व (वर्तना, continuity) का सूचक है ।

कालाणुओ मे परस्पर मे मिलने की शक्ति नही होने से वे पुद्गल-स्कन्ध के समान बँध नही सकते । वे अदृश्य, अरूपी एव निष्क्रिय होते है ।

काल-द्रव्य मे अस्तित्व तो माना गया है किन्तु अन्य द्रव्यो के समान उसमे कायत्व (अर्थात् विस्तार एव मिलन) की शक्ति नही है । अत उसे अनस्तिकाय कहा गया है ।[1]

परिमाण की दृष्टि से काल का सबसे वडा परिमाण महाकल्प है जो उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी के काल के जोड के वरावर है और जो लगातार

1 पचास्तिकाय, गाथा-22

77 अको मे लिखा जा सकता है । काल का सबमे छोटा परिमाण 'समय' है ।

काल-द्रव्य के वर्तना (वर्तना कराना), परिणाम (अपनी मर्यादा के भीतर प्रति समय परिवर्तित पर्याय), क्रिया (हलन-चलन रूप व्यापार से युक्त द्रव्य की अवस्था), परत्व (आयु की अपेक्षा बड़ा) और अपरत्व (आयु की अपेक्षा छोटा) कार्य अथवा उपकार माने गए हैं ।[1]

भारतीय दर्शनो मे से जैनदर्शन ने काल-द्रव्य के विषय मे जितना गहन अध्ययन एव विश्लेषण किया है वह अन्य दर्शनो में नही । न्याय-वैशेषिक दर्शनो मे यद्यपि उसका वर्णन किया गया है, किन्तु वह जैनदर्शन के उक्त व्यवहार-काल तक ही सीमित रह गया । निश्चय-काल तक उनकी पहुँच नही हो सकी ।

कालद्रव्य और आधुनिक विज्ञान

आधुनिक विज्ञान ने भी काल-द्रव्य के विषय मे खोजबीन की है और उनके निष्कर्ष भी लगभग वही हैं, जिनका प्रतिपादन जैनाचार्य सहस्राब्दियो पूर्व कर चुके हैं । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हैनशा का यह कथन विचारणीय है[2] —

"Space (आकाश-द्रव्य), Matter (पुद्गल-द्रव्य), Time (काल-द्रव्य) and Medium of motion (धर्म-द्रव्य) are all separate in our minds We can not imagine that one of them could depend on another or be converted into another." सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गशा ने तो स्पष्ट घोषित किया है कि "विश्व के विकास मे 'काल' का विशेष महत्त्व है। बिना उसके परिणमन एव परिवर्तन सम्भव नही । अत काल भी द्रव्य है ।"[3]

---

1 पचास्तिकाय, गाथा-24

2 महावीर स्मृति ग्रन्थ, पृ० 126

3 वही, पृ० 126

पारस्परिक आदान-प्रदान की दिशा मे कोई भी विचार नही किया गया, जो कि अत्यावश्यक ही नही, कुन्दकुन्द के दार्शनिक रूप के वैशिष्ट्य-प्रदर्शन के लिए अनिवार्य भी है। इसी प्रकार कुन्दकुन्द की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण, व्रजभाषा एव उसके भक्ति-प्रधान साहित्य के ऊपर प्रभाव, कुन्दकुन्द के साहित्य का सर्वांगीण सास्कृतिक, सामाजिक एव काव्यात्मक मूल्याकन भी अभी तक नही हो पाया है। इन पक्षो पर भी जब तक विस्तृत प्रामाणिक अध्ययन नही हो जाता, तब तक हम कुन्दकुन्द के बहुआयामी महान् व्यक्तित्व से अपरिचित ही रहेगे।

वस्तुत आचार्य कुन्दकुन्द केवल श्रमण-परम्परा के ही महान् सवाहक आचार्य नही, अपितु भारतीय सस्कृति, समाज एव इतिहास के विविध-पक्षो को प्रकाशित करने वाले एक महर्षि, योगी एव आचार्य-लेखक भी हैं। यही नही, लोक-व्यवस्था तथा द्रव्य-व्यवस्था के क्षेत्र मे उनका जो गहन-चिंतन एव विश्लेषण है, वह भी बेजोड है। भौतिक-जगत् के अनेक प्रच्छन्न रहस्यो का उन्होने जिस प्रकार उद्घाटन एव प्रकाशन किया है, उससे भारतीय प्राच्य-विद्या, विशेष रूप से जैन-विद्या गौरव के अग्र-शिखर पर प्रतिष्ठित हुई है। ऐसे महिमा-मण्डित आचार्य के द्विसहस्राब्दी-समारोह के प्रसग मे यदि उनके सर्वांगीण पक्षो को प्रकाशित किया जा सके, तो वह इस सदी की एक बहुत बडी उपलब्धि मानी जायेगी।

अधिक सारतत्त्व है सम्यग्दर्शन, क्योकि सम्यग्दर्शन से ही सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र से निर्वाण की सम्प्राप्ति ।

विशेष— प्रस्तुत गाथा मे कुन्दकुन्द ने लक्ष्यसिद्धि के लिए रत्नत्रय के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। रत्नत्रय का अर्थ है—सम्यक्दर्शन अर्थात् निर्दोष श्रद्धान एव विश्वास, ज्ञान अर्थात् निर्दोष ज्ञान एव निर्दोष चारित्र ।

आचार्यों ने एक उदाहरण देते हुए बताया है कि जिस प्रकार एक रोगी को स्वस्थ होने के लिए चिकित्सक एव चिकित्सा पर विश्वास करना आवश्यक है, क्योकि उसके बिना दवा का प्रभाव रोगी की बीमारी पर नही पड सकता। अत सबसे पहले सम्यक् विश्वास, फिर चिकित्सक एव चिकित्सा के विषय मे उसकी उपादेयता का ज्ञान भी आवश्यक है। तत्पश्चात् चिकित्सक के कथनानुसार दवा समय पर लेना भी आवश्यक है। इन तीनो विधियो मे से यदि किसी एक मे किसी भी प्रकार की कमी रहेगी, तो रोगी जिस प्रकार ठीक नही हो सकता उसी प्रकार श्रावक एव साधु भी रत्नत्रय के बिना लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकते ।

शक्ति के अनुसार ही धर्माचरण किया जाए—

4 ज सक्कइ त कीरइ ज च ण सक्केइ त च सद्दहण ।
केवलिजिणेहि भणिय सद्दहमाणस्य सम्मत ।।
(दर्शन० 22)

—जितना चारित्र धारण किया जा सके, उतना मात्र ही धारण करना चाहिए और जो धारण नही किया जा सकता, उसका श्रद्धान करना चाहिए। क्योकि केवलज्ञानी ने श्रद्धान करनेवालो के इस गुण को ही सम्यग्दर्शन बतलाया है।

विशेष—व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार ही साधना करना चाहिए। अन्यथा उसकी स्थिति वैसी ही होगी जैसे कि दुर्बल बैल पर शक्ति से अधिक बोझा लाद देने से हो सकती है। कुन्दकुन्द के सकेतानुसार व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार ही धर्माचरण करना चाहिए तथा जो उसकी

शक्ति के बाहर हो, उसके प्रति वह श्रद्धालु बना रहे। यही उपयुक्त भी है। इसमे व्यर्थ के प्रदर्शनो की आवश्यकता नही है।

सदाचरण ही श्रेष्ठ धर्म है—

5 सव्वे वि य परिहीणा रूवविरूवा वि वदिदमुवया वि।
सील जेसु सुसील सुजीविद माणुस तेसिं॥

(शीलपाहुड 18)

—जो भले हीहीन-जाति के हैं, रूप से विरूप अर्थात् कुरूप हैं और जो वृद्धावस्था से युक्त हैं—इन सबके होने पर भी यदि वे सुशील हैं तो उन्ही की मानवता जीवन्त है अर्थात् उन्ही का मनुष्य-भव सर्वश्रेष्ठ है।

तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति लोक का हितैषी है, उसका निश्छल-व्यवहार एव सरल-हृदय होना ही पर्याप्त है। भले ही वह जाति एव कुल से हीन हो अथवा कुरूप या अपग, तो भी वह अपने जीवन मे आगे बढ सकता है और सफल तथा यशस्वी हो सकता है।

ससार का समस्त वैभव क्षणिक है—

6 वरभवण-जाण-वाहण-सयणासण-देव-मणुवरायाण।
मादु-पितु-सजण-भिच्चसवधिणो य पिदिवियाणिच्चा॥

(वारसाणु० 3)

—उत्तम भवन,यान, वाहन, शयन, आसन, देव, मनुष्य, राजा, माता, पिता, स्वजन, सेवक सम्बन्धी तथा चाचा आदि सभी अनित्य हैं।

विशेष—लोग अपने वैभव पर इठलाते हैं, सौन्दर्य पर अभिमान करते हैं, उच्चकुल मे जन्म लेने के कारण घमण्ड मे चूर रहते हैं, किन्तु मरते समय कितनी वस्तुएँ उनके साथ मे जाती हैं? यह सभी जानते हैं कि सिकन्दर ने विश्व-विजय की, अरबो-खरबो की सम्पत्ति लूटी, किन्तु कितना धन वह साथ मे ले गया? कुन्दकुन्द कहते हैं कि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा के अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं, वे सब क्षणिक हैं। अत उनमे लिप्त मत बनो।

सच्चा श्रमण कौन ?—

7 समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पससणिदसमो।
समलोट्ठु कंचणो पुण जीविदमरणो समो समणो॥
(प्रवचन सार 3/41)

—जो शत्रु एव मित्र, सुख एव दु ख, प्रशसा एव निंदा तथा पत्थर एव सोना और जीवन एव मरण मे समवृत्ति वाला है, वही (यथार्थत सच्चा) श्रमण है।

सुपात्र को दान एव भावों की निर्मलता आवश्यक—

8 पत्तविणा दाण य सुपुत्तविणा वहुधण महाखेत्त।
चित्तविणा वयगुणचारित्त णिक्कारण जाणे॥
(रयण० 30)

—जिस प्रकार सुपुत्र के विना विपुल धन और बडे-बडे खेतो का होना व्यर्थ है, एव अच्छे पात्र के विना दान देना भी निरर्थक है। उसी प्रकार भावो के विना व्रत, गुण और चारित्र का पालन भी निष्फल है।

परमाणु का लक्षण—

9 अत्तादि अत्तमज्झ, अत्तंत णेव इदिए गेज्झ।
अविभागी ज दव्व, परमाणू त वियाणाहि॥
(णियम० 26)

—स्वस्वरूप ही जिसका आदि है, स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है, जो इद्रियो के द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता और जो अविभागी है, उस द्रव्य को परमाणु जानो।

विशेष—भौतिक जगत् के विषय मे कुन्दकुन्द ने वहुत लिखा है। वह अलग ही चर्चा का विषय हो सकता है। उसका एक छोटा-सा उदाहरण ही यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। कुन्दकुन्द कहते हैं कि परमाणु अर्थात् Atom वहुत शरारती एव नखरेबाज है, साथ ही महान शक्तिशाली भी। समस्त

लोकाकाश उससे भरा पडा है। यद्यपि वह खोखला है, उसका न आदि है न अन्त और न मध्य। वह इन्द्रियो के द्वारा भी ग्रहण नही किया जा सकता। वह अविभागी है। कुन्दकुन्द का यह विचार दो हजार वर्ष पूर्व का है। बिना प्रयोगशाला के तथा लाइट, यन्त्र के विना ही उन्होने परमाणु को अपने दिव्य नेत्रो एव दिव्य ज्ञान की परखनली से देखा था, फिर भी वह सटीक उतरा। और अब अरबो-खरबो रुपयो की लागत की प्रयोगशाला मे बैठकर वैज्ञानिको की तीन-चार पीढियो के लगातार प्रयोग करते रहने के बाद भी देखिए कि उन्होने परमाणु के विषय मे क्या खोज की है? उनका यह कथन पठनीय है—

"We can not see atoms either and never shall be able too even if they were a million times bigger it would still be *impossible to see them even with the most powerful* microscope that has been made"

अर्थात् हम लोग परमाणु को न तो देख सके हैं और न आगे भी देख सकेंगे। भले ही दस लाख परमाणु एक साथ भी मिल जावें, तो भी हम उसे शक्तिशाली दूरवीन से भी नही देख सकेंगे।

परिशिष्ट-2

कुन्दकुन्द-नवनीत

षड्द्रव्य-वर्णन

1 जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगास।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहता ॥

(पञ्चास्तिकाय, 4)

—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, तथा आकाश ये अस्तित्व मे नियत, अनन्यमय और अणुमहान् हैं।

अस्तिकाय का स्वरूप—

2 जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्ण जेहिं तेल्लोक्क ॥

(पञ्चास्तिकाय, 5)

—जिन्हे विविध गुणो और पर्यायो के साथ अपनत्व है, वे अस्तिकाय हैं, जिनसे तीनो लोक निष्पन्न हैं।

अस्तिकायो का स्वभाव—

3 अण्णोण्ण पविसता देता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलता वि य णिच्च सग सभाव ण विजहति ॥

(पञ्चास्तिकाय, 7)

—वे एक-दूसरे मे प्रवेश करते हैं, अन्योन्य अवकाश देते है, परस्पर मिल

—पर्यायो रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नही होती । श्रमणो ने दोनो के अनन्यभाव को प्ररूपित किया है ।

द्रव्य और गुणो का सम्बन्ध—

8 दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्व विणा ण सभवदि ।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाण हवदि तम्हा ।।

(पञ्चा० 13)

—द्रव्य के विना गुण नही होते और गुणो के विना द्रव्य नही होता । इसलिए द्रव्य और गुणो का अव्यतिरिक्तभाव है ।

सत्ता का अभाव नहीं होता—

9 भावस्य णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो ।
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वति ।।

(पञ्चा० 15)

—भाव का नाश नही है तथा अभाव का उत्पाद नही है । भाव ही गुणपर्यायो मे उत्पाद एव व्यय करते हैं ।

द्रव्यो के गुण एव पर्यायें—

10 भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो ।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ।।

(पञ्चा० 16)

—जीवादि ही 'भाव' हैं । जीव के गुण चेतना तथा उपयोग हैं और जीव की पर्यायें देव, मनुष्य, नारक, तिर्यञ्चरूप अनेक हैं ।

सत्ता का नाश नहीं होता—

11 मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा ।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ।।

(पञ्चा० 17)

स्कन्ध के विविध रूप—

19 खध सयलसमत्थ तस्स दु अद्ध भणति देसो त्ति।
अद्धद्ध च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥
(पञ्चा० 75)

—सभी परमाणुओ से मिश्रित पिण्ड 'स्कन्ध' कहलाता है, और स्कन्ध से आधा 'स्कन्धदेश', उससे भी आधा 'स्कन्धप्रदेश' और अविभागी अश को 'परमाणु' कहा गया है।

20 भूपव्वदमादीया भणिदा अदिथूलथूलमिदि खधा।
थूला इदि विण्णेया सप्पो-जल-तेलमादीया ॥
(नियमसार 22)

—पृथ्वी, पर्वत आदि प्रथम अति स्थूलस्थूल-स्कन्ध कहे गए है और घी, जल, तेल आदि दूसरे स्थूल-स्कन्ध हैं, यह जानना चाहिए।

21. छायातवमादीया थूलेदर खदमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिदा खधा चउरक्खविसया य ॥
(नियमसार 23)

—छाया, धूप आदि तीसरे प्रकार के स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्ध हैं, और चार इन्द्रियो के विषयभूत स्कन्ध चौथे प्रकार के सूक्ष्म-स्थूल कहे गए है।

22 सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीदा खधा अदिसुहुमा इदि परूवेति ॥
(नियमसार 24)

—पुन कर्म-वर्गणा के योग्य स्कन्ध पाँचवें प्रकार के अर्थात् सूक्ष्म होते है। उनके विपरीत कर्मवर्गणा के अयोग्य स्कन्ध छठवें—अति-सूक्ष्म होते हैं, ऐसा सर्वज्ञो ने कहा है।

—काल परिणाम से उत्पन्न होता है (अर्थात् व्यवहारकाल का माप जीव-पुद्गलो के परिणाम द्वारा होता है)। परिणाम द्रव्यकाल से उत्पन्न होता है। यह, दोनो का स्वभाव है। काल क्षणभगुर तथा नित्य है।

आत्मा का स्वरूप-वर्णन

शरीर एवं जीव एक नहीं—

31 ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो ॥

(समयसार 27)

—व्यवहार-नय कहता है कि जीव और देह वस्तुत एक हैं और निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो जीव और देह कभी एक पदार्थ नही हैं।

जीव का स्वरूप—

32 अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द।
जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण ॥

(समयसार 49)

—जो रसरहित है, रूपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियो के अगोचर है, चेतना-गुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा जिसका ग्रहण नही होता और जिसका आकार बताया नही जा सकता, उसे जीव (आत्मा) जानो।

ज्ञानी जीव के भाव ज्ञानमय ही होते हैं—

33 कणयमया भावादो जायते कुडलादयो भावा।
अयमयया भावादो जह जायते दु कडयादी ॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥
(समयसार 130, 131)

—जिस प्रकार स्वर्णमय भाव से कुण्डल आदि भाव उत्पन्न होते हैं तथा लोहमय भाव से कडा आदि भाव उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं तथा ज्ञानी के समस्त ज्ञानमय भाव होते हैं।

शुभ एवं अशुभ दोनो ही भाव वन्ध के कारण हैं—

34 सोवण्णिय पि णियल वधदि कालायस पि जह पुरिस ।
बधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ॥
(समयसार 146)

—जिस प्रकार सोने की वेडी भी पुरुष को बाँधती है और लोहे की वेडी भी वाँधती है, उसी प्रकार शुभ-अशुभ किया हुआ कर्म भी जीव को वाँधता है अर्थात् शुभ एव अशुभ दोनो ही बन्ध के कारण हैं।

राग ही बन्ध का मूल कारण—

35 रत्तो वधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपण्णो ।
एसो जिणोवदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥
(समयसार 150)

—रागी जीव कर्मों को बाँधता है और विरागी जीव कर्मों से छूटता है ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। इसलिए हे भव्य, तू कर्मों मे राग मत कर।

आत्मा का पुद्गलो क साथ कोई सम्बन्ध नहीं—

36 जह को वि णरो जपदि अम्हाण गामविसयणयररट्ठ ।
ण य होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ॥
(समयसार 325)

—जिस प्रकार सुपुत्र के बिना विपुल धन और बड़े-बड़े खेतो का होना व्यर्थ है, तथा अच्छे पात्र के विना दान देना निरर्थक है उसी प्रकार भावो के विना व्रत, गुण और चारित्र का पालन भी निष्फल है।

हिंसक स्वभाव वाले धर्म-नाशक है—

38 वाणर-गद्दह-साण-गय-वग्घ-वराह-कराह।
पक्खि-जलूय-सहाव णर जिणवरधम्म-विणासु॥
(रयण० 42)

—जो मनुष्य वन्दर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सुअर, कछुवा और पक्षी तथा जोक के स्वभाव वाले होते हैं, वे जिनेन्द्रदेव के धर्म का विनाश करते हैं।

गुरु-भक्ति के बिना लक्ष्य-प्राप्ति असम्भव—

39 रज्ज पहाणहीण पदिहीण देसगामरट्ठ वल।
गुरुभत्तिहीण-सिस्साणुट्ठाण णस्सदे सव्व॥
(रयण० 72)

—जैसे राजा के विना राज्य और सेनापति के विना देश, ग्राम, राष्ट्र, सैन्य सुरक्षित नही रह पाते, वैसे ही गुरु की भक्ति के बिना शिष्यो के अनुष्ठान सफल नही होते।

श्रमणो के लिए दूषण—

40 जोइसवेज्जामतोवजीवण वायवस्स ववहार।
धणधण्णपडिग्गहण समणाण दूसण होइ॥
(रयण० 96)

—ज्योतिष-विद्या और मन्त्र-विद्या द्वारा आजीविका चलाना तथा भूत-प्रेत का प्रदर्शन कर धन-धान्यादि लेना ये सभी श्रमणो के लिए दूषण कहे गये हैं।